

गढ़ से गलियों तक

— 2025 —

गढ़ से गलियों तक

नरौनी वंश की सदियों की यात्रा

नरौनी वंश के सदस्यों द्वारा संकलित

कॉपीराइट सूचना

प्रकाशन वर्ष: 2025 | प्रथम संस्करण

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पुस्तक का कोई भी भाग,
लेखक या प्रकाशक की पूर्व लिखित अनुमति के बिना,
किसी भी रूप, भाषा या माध्यम (इलेक्ट्रॉनिक,
मैकेनिकल, फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग, स्कैनिंग आदि) में
पुनरुत्पादित, संग्रहित या प्रसारित नहीं किया जा
सकता।

इस पुस्तक को बिना अनुमति के कॉपी करना,
वेबसाइट पर पोस्ट करना या किसी अन्य माध्यम से
वितरित करना भारतीय कॉपीराइट अधिनियम, 1957
के अंतर्गत दंडनीय अपराध है।

"स्मृतियों की छाँव में, भविष्य की ओर एक दीप।"

आईएसबीएन: 978-93-5626-011-5

समर्पण

यह पुस्तक समर्पित हैः

उन अनाम पूर्वजों को,
जिन्होंने नरवरगढ़ की छाया में
और नरेन्द्रपुर की धूप में नई जमीन बसाई।

उन बुजुर्गों को,
जिनकी स्मृतियों में यह इतिहास सुरक्षित रहा
और जिनकी आवाज़ में यह गाथा जीवित रही।

आने वाली पीढ़ियों को,
जो इस विरासत को संभालेंगे
और इसे नई ऊँचाइयों तक ले जाएंगे।

"जिनकी जड़ों में इतिहास है, उनकी शाखों में भविष्य फलता है।"

यह पुस्तक न केवल स्मृति का दस्तावेज़ है, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के
लिए प्रेरणा का स्रोत भी है।

— लेखक परिवार की ओर से

स्मरणीय पंक्तियाँ

“इतिहास केवल वही नहीं जो लिखा
गया,
बल्कि वह भी है जो याद किया
गया।”

— नरौनी परिवार की ओर से

विषय-सूची

आमुख	आमुख
भूमिका	भूमिका
आभार	आभार

भाग एक: उत्पत्ति एवं प्रवास

I.	परिचय	I. परिचय
1.	प्रस्तावना	1. प्रस्तावना
2.	मूल स्रोत	2. मूल स्रोत
3.	महान् पूर्वज	3. महान् पूर्वज
4.	यात्रा वृत्तांत	4. यात्रा वृत्तांत
5.	पूर्वांचल में पदार्पण	5. पूर्वांचल में पदार्पण
6.	बसाहटों का विस्तार	6. बसाहटों का विस्तार
7.	वंशधर राय	7. वंशधर राय
8.	नरेन्द्रपुर की स्थापना	8. नरेन्द्रपुर की स्थापना
9.	मृतिश विरोद्ध	9. मृतिश विरोद्ध
10.	दीरगा राय	10. दीरगा राय

भाग दो: सामाजिक-सांस्कृतिक योगदान

II.	परिचय	II. परिचय
11.	हथुआं राज्य में भूमिका	11. हथुआं राज्य में भूमिका
12.	स्वतंत्रता संग्राम	12. स्वतंत्रता संग्राम
13.	शिक्षा एवं संस्कृति	13. शिक्षा एवं संस्कृति

भाग तीनः व्यक्तित्व एवं विरासत

III.	परिचय	III. परिचय
14.	संस्थापक की श्रृंखला	14. संस्थापक की श्रृंखला
15.	विरासत का पुनर्जीवन	15. विरासत का पुनर्जीवन

भाग चारः वर्तमान और भविष्य

IV.	परिचय	IV. परिचय
16.	वंशावली एवं दस्तावेज़	16. वंशावली एवं दस्तावेज़
17.	सामाजिक योगदान	17. सामाजिक योगदान
18.	विरासत का भविष्य	18. विरासत का भविष्य
19.	उपसंहार	19. उपसंहार

आमुख

“गढ़ से गलियों तक” एक साधारण परिवार की असाधारण कहानी है।

यह किताब बताती है कि कैसे एक परिवार नरवरगढ़ किले से निकला और नरेन्द्रपुर गाँव में बस गया। यह सैकड़ों साल की यात्रा की कहानी है।

इस किताब की खास बात यह है कि इसे किसी बाहर के व्यक्ति ने नहीं, बल्कि खुद परिवार के लोगों ने लिखा है। उन्होंने अपने बुजुर्गों से सुनी कहानियों को इकट्ठा किया और किताब बनाई।

आजकल पुरानी बातें जल्दी भूल जाती हैं। यह किताब उन बातों को याद रखने में मदद करती है। यह बताती है कि हम कहाँ से आए हैं।

यह किताब सिर्फ नरौनी परिवार के लिए ही नहीं, बल्कि हर उस व्यक्ति के लिए उपयोगी है जो अपने इतिहास को जानना चाहता है।

इसे पढ़िए। इसमें बहादुरी, संघर्ष और समाज के प्रति प्यार की कहानियाँ हैं। यह किताब आपको भी अपने अतीत से जुड़ने के लिए प्रेरित करेगी।

भूमिका

यह किताब हमारे परिवार की कहानी है।

हम कहाँ से आए?

हम यहाँ कैसे बसे?

हमारे पूर्वजों ने क्या किया?

इन सवालों के जवाब देने के लिए मैंने यह किताब लिखी।

मैंने बुजुर्गों से बात की।

पुरानी कहानियाँ सुनी।

कुछ पुराने कागज़ देखे।

मेरी इच्छा है कि हमारे परिवार के हर व्यक्ति यह किताब पढ़ें।
खासकर बच्चे और युवा। ताकि सब जान सकें - हम कौन हैं और
कहाँ से आए हैं।

— परिवार का एक सदस्य

आभार

इस पुस्तक के शोध, संकलन और प्रस्तुति में अनेक लोगों का सहयोग रहा है, जिनके प्रति मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

परिवार के सदस्य:

- उन सभी बुजुर्गों को, जिन्होंने अपनी अनमोल स्मृतियाँ और कहानियाँ साझा कीं।
- परिवार के वे सदस्य जिन्होंने पुराने दस्तावेज, चिट्ठियाँ और फोटोग्राफ उपलब्ध कराए।

विशेषज्ञ और मार्गदर्शक:

- डॉ. फणीश सिंह को विशेष रूप से धन्यवाद, जिनके द्वारा संग्रहित ऐतिहासिक सामग्री और शैक्षणिक मार्गदर्शन ने इस कार्य की नींव रखी।
- उन सभी इतिहास-प्रेमियों एवं शोधकर्ताओं को जिनके सुझावों ने इस कृति को समृद्ध बनाया।

— एक संकलनकर्ता

I

भाग एकः उत्पत्ति एवं प्रवास

इस भाग में परिवार की उत्पत्ति, जड़ों की खोज, और विभिन्न स्थानों पर हुए प्रवास की ऐतिहासिक यात्रा का वर्णन है।

प्रस्तावना - वो कहानियाँ जो किताबों में नहीं लिखीं

इतिहास के लिखित और अलिखित पृष्ठ

इतिहास क्या है? क्या वह केवल वही है जो पत्थरों पर उकेरा गया, पांडुलिपियों में सुरक्षित किया गया, या शासकों के दरबारी इतिहासकारों द्वारा दर्ज किया गया? हमारे सामने इतिहास की दो धाराएँ हैं—एक, जो प्रामाणिक दस्तावेज़ों, शिलालेखों और सरकारी अभिलेखों में संरक्षित है; और दूसरी, जो हमारे दादा-दादी, नाना-नानी की कहानियों में, गाँव के चौपालों की बातचीत में, लोकगीतों और मुहावरों में जीवित है।

भारत की ऐतिहासिक परंपरा में ‘इतिहास’ शब्द स्वयं ‘इति-ह-आस’ से बना है—‘यह निश्चित रूप से ऐसा ही हुआ’। पर क्या केवल लिखित साक्ष्य ही ‘निश्चित’ होते हैं? महाभारत के युद्ध के बारे में हम क्या जानते हैं? केवल वही जो ग्रंथों में लिखा है, या वह भी जो हर परिवार में सुनाई जाने वाली उन अनकही कहानियों में छिपा है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही हैं?

इस पुस्तक में हम उसी ‘अलिखित इतिहास’ की खोज पर निकले हैं—एक ऐसी गाथा जो राजा-महाराजाओं के शासनकाल की महागाथा नहीं, बल्कि एक साधारण परिवार के असाधारण संघर्ष, प्रवास और स्थापना की कहानी है। यह कहानी न तो किसी राजदरबार के भाट ने गाई, न ही किसी दरबारी कवि ने लिखी। यह कहानी हमारे बुजुर्गों की स्मृतियों में

सुरक्षित रही, जिन्होंने इसे अपनी अगली पीढ़ी को सौंपा, फिर उस पीढ़ी ने अगली को— और इस तरह यह गाथा जीवित रही।

मौखिक परंपरा का महत्व

मानव सभ्यता का एक बड़ा हिस्सा मौखिक परंपरा पर ही टिका है। वेदों की ऋचाएँ सैकड़ों वर्षों तक मौखिक रूप से ही संरक्षित रहीं, फिर लिपिबद्ध हुईं। भारत के गाँवों में आज भी ऐसे लोकगायक हैं जो अपनी स्मृति में सैकड़ों पृष्ठों की कथाएँ संजोए हुए हैं। नरौनी वंश की कहानी भी इसी मौखिक परंपरा की उपज है।

हमारे बुजुर्ग अक्सर कहते थे—“लिखा तो नहीं है, पर हमें याद है।” यह ‘याद रखना’ कोई साधारण क्रिया नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक कर्तव्य था। जब कोई दादा अपने पोते को बताता था कि “हमारे पूर्वज नरवरगढ़ से आए थे,” तो वह केवल एक सूचना नहीं दे रहा होता था—वह एक पूरी विरासत, एक पहचान, एक गौरवबोध सौंप रहा होता था।

मौखिक इतिहास की अपनी चुनौतियाँ हैं—समय के साथ विवरण धुँधले हो सकते हैं, घटनाओं का क्रम बदल सकता है, किंतु उसकी आत्मा, उसका मूल भाव अमिट रहता है। इस पुस्तक में हमने उसी मूल भाव को पकड़ने का प्रयास किया है—न कि केवल तथ्यों और तिथियों का संग्रह करने का।

नरौनी गाथा: एक जीवंत विरासत

नरौनी गाथा केवल एक परिवार का वृत्तांत नहीं है। यह एक ऐसे समय का दस्तावेज़ है जब भारत की सामाजिक संरचना में बड़े परिवर्तन हो रहे थे। जब राजपूत योद्धा, जो सदियों से

किलों और राजदरबारों से जुड़े थे, नई परिस्थितियों में अपनी पहचान बचाने और नया जीवन स्थापित करने के लिए प्रवास पर निकले।

यह गाथा हमें बताती है कि कैसे मध्य भारत के नरवरगढ़ किले से निकले दो भाई—दुर्गदेव और लबंगदेव—तीर्थयात्रा के बहाने पूर्व की ओर चले। कैसे उन्होंने उत्तराखण्ड की कंदराओं से होकर बलिया के मैदानी इलाकों तक की यात्रा की। कैसे उनके वंशजों ने देवढी, बांसडीह, सुखपुर और अंततः नरेन्द्रपुर जैसे गाँवों की स्थापना की।

लेकिन यह केवल भूगोल की यात्रा नहीं है—यह पहचान की यात्रा है। ‘नरवर’ से ‘नरौनी’ बनने की यात्रा। एक राजपूत योद्धा से एक कृषक-समुदाय के संरक्षक बनने की यात्रा। एक सैनिक से एक सामाजिक नेता बनने की यात्रा।

इस गाथा में वीरता के भी प्रसंग हैं और प्रतिरोध के भी। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष की कहानियाँ हैं। स्वतंत्रता आंदोलन में बलिदान की गाथाएँ हैं। सामाजिक न्याय और शरणार्थियों की रक्षा की मिसालें हैं।

पर सबसे बढ़कर, यह एक जीवंत विरासत की कहानी है—एक ऐसी विरासत जो आज भी नरेन्द्रपुर और आसपास के गाँवों में साँस ले रही है। जो हमारे त्योहारों में, हमारे रीति-रिवाजों में, हमारी बोली-भाषा में और सबसे बढ़कर, हमारी स्मृतियों में जीवित है।

इस पुस्तक का उद्देश्य इसी जीवंत विरासत को शब्दों में बाँधना है—ताकि आने वाली पीढ़ियाँ जान सकें कि वे कहाँ से आई हैं, उनके पूर्वजों ने किन संघर्षों का सामना किया,

और उन्होंने कैसे न केवल अपना अस्तित्व बचाया, बल्कि एक नई सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान भी गढ़ी।

यह पुस्तक अंतिम शब्द नहीं, बल्कि एक शुरुआत है—हमारे अतीत से संवाद करने की, उसे समझने की, और उसे आने वाले कल के लिए सुरक्षित रखने की।

क्योंकि जो इतिहास हम भूल जाते हैं, वही हमारी पहचान बनने से चूक जाता है।

मूल स्रोत - नरवरगढ़ का ऐतिहासिक स्रोत

विन्ध्याचल की गोद में एक अजेय दुर्ग

नरवरगढ़ किला—वर्तमान मध्य प्रदेश के शिवपुरी जिले में विन्ध्याचल पर्वतमाला की गोद में स्थित एक ऐसा दुर्ग जो केवल पथरों का ढाँचा नहीं, बल्कि सदियों के इतिहास, वीरगाथाओं और सांस्कृतिक परंपराओं का जीवंत साक्षी है। आठ वर्ग किलोमीटर में फैला यह किला अपनी सामरिक स्थिति, वास्तुकला की भव्यता और ऐतिहासिक महत्व के कारण मध्य भारत के सबसे प्रमुख दुर्गों में गिना जाता है।

भौगोलिक एवं सामरिक महत्व

नरवरगढ़ की स्थापना एक ऐसे स्थान पर की गई थी जहाँ से पूरे क्षेत्र पर नज़र रखी जा सके। पहाड़ी की चोटी पर बने इस किले तक पहुँचने के लिए संकरे रास्ते और प्राकृतिक चट्टानों से निर्मित सुरक्षा घेरा था। यही कारण था कि इतिहास में अनेक आक्रमणकारी इस किले को जीतने में असफल रहे।

किले के चारों ओर गहरी खाइयाँ और प्राकृतिक जलाशय थे जो न केवल पानी की आपूर्ति सुनिश्चित करते थे, बल्कि शत्रु के लिए अतिरिक्त बाधा भी खड़ी करते थे। किले के भीतर

स्वयं के जलस्रोत, अन्न भंडार और निवास स्थान होने के कारण यह लंबी घेराबंदी का सामना कर सकता था।



ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: विभिन्न शासक वंश

प्राचीन काल: नाग वंश की राजधानी

प्राचीन समय में नरवरगढ़ 'नलपुरा' के नाम से जाना जाता था और यह नाग वंश की राजधानी था। 57 ईस्वी से 300 ईस्वी तक यहाँ नाग शासकों का शासन रहा। नवें नाग शासक देव नाग (270-300 ईस्वी) के समय में सम्राट् अशोक ने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया और नाग शासन का अंत हुआ।

मध्यकाल: राजपूत शासन

10वीं शताब्दी में कछवाहा वंश के राजपूतों ने नरवर पर अधिकार किया और किले के वर्तमान स्वरूप के निर्माण का श्रेय उन्हीं को जाता है। इसके बाद परिहार वंश ने यहाँ शासन किया—वहीं परिहार वंश जिसकी एक शाखा से नरौनी राजपूतों की उत्पत्ति हुई।

परिहार वंश: नरौनी पहचान का मूल स्रोत

परिहार (प्रतिहार) वंश भारतीय इतिहास के सबसे प्रतापी राजपूत वंशों में से एक था। मान्यता है कि इस वंश की उत्पत्ति लक्ष्मण से हुई, जिन्हें रामायण काल में 'प्रतिहार' (रक्षक) की उपाधि मिली थी। नरवरगढ़ में परिहार शासन के दौरान दो प्रमुख शासक हुए:

1. **दिघदेव:** जिन्होंने किले और आसपास के क्षेत्र का विस्तार किया
2. **लबदेव:** जिन्होंने प्रशासनिक और सांस्कृतिक विकास पर ध्यान दिया

इन्हीं दोनों शासकों के नाम परिहार वंश की उस शाखा से जुड़े हैं जो बाद में ‘नरौनी’ के नाम से जानी गई। नरवरगढ़ में निवास के कारण ही इनका यह नाम पड़ा—‘नरवर’ से ‘नरावनी’ और फिर स्थानीय उच्चारण में ‘नरौनी’।

श्रीनेत्र वंशम् से संबंध

परंपरागत स्रोतों के अनुसार नरौनी वंश ‘श्रीनेत्र वंशम्’ की शाखा माना जाता है। संस्कृत में ‘श्रीनेत्र’ का अर्थ है ‘शुभ दृष्टि वाला’ या ‘दूरदर्शी’। यह नाम इस वंश की विशेषता को दर्शाता है—नीतिज्ञता, दूरदृष्टि और परंपरागत मर्यादाओं का पालन।

इस वंश में मुख्य रूप से कश्यप गोत्र पाया जाता है, हालाँकि कुछ शाखाएँ वशिष्ठ या भारद्वाज गोत्र से भी जुड़ी हैं। गोत्र व्यवस्था न केवल धार्मिक पहचान थी, बल्कि सामाजिक संरचना और वैवाहिक संबंधों का आधार भी थी।

सांस्कृतिक एवं धार्मिक केंद्र

नरवरगढ़ केवल एक सैन्य किला नहीं था, बल्कि एक संपन्न सांस्कृतिक केंद्र भी था। किले के भीतर अनेक मंदिर, जलाशय, बाग-बगीचे और सभागार थे। यहाँ के प्रमुख मंदिरों में शिव मंदिर, हनुमान गढ़ी और कृष्ण मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

किले में होने वाले त्योहार और मेले, विशेषकर नरवर की होली और चैत्र नवरात्र का मेला, पूरे क्षेत्र में प्रसिद्ध थे। ये आयोजन न केवल धार्मिक महत्व के थे, बल्कि सामाजिक एकता

और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के साधन भी थे।

वास्तुकला की विशेषताएँ

नरवरगढ़ किला राजपूत वास्तुकला का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ थीं:

- प्रवेश द्वार:** किले तक पहुँचने के लिए अनेक सुरक्षित द्वार, जिनमें से प्रत्येक का निर्माण रणनीतिक दृष्टि से किया गया था।
- जल प्रबंधन:** किले के भीतर कुएँ, बावड़ियाँ और जलाशयों की व्यवस्था जो लंबी घेराबंदी में भी पानी की आपूर्ति सुनिश्चित कर सके।
- सैन्य संरचनाएँ:** ऊँची दीवारें, प्रहरीदुर्ग, और तीरंदाजों के लिए बने स्थान।
- निवास क्षेत्र:** राजपरिवार, सैनिकों और अन्य लोगों के लिए अलग-अलग निवास स्थान।
- सांस्कृतिक स्थल:** मंदिर, सभागार और बाग-बगीचे।

नरौनी पहचान का प्रतीक

नरवरगढ़ किला नरौनी वंश के लिए केवल एक भौगोलिक स्थान नहीं, बल्कि पहचान का प्रतीक था। जब दुर्गदेव और लबंगदेव ने इस किले को छोड़कर पूर्व की ओर प्रस्थान किया,

तो वे केवल एक स्थान को नहीं छोड़ रहे थे—वे एक पूरी जीवनशैली, एक सांस्कृतिक परंपरा और एक ऐतिहासिक विरासत को साथ लेकर चल रहे थे।

किले की वीरता की गाथाएँ, प्रशासनिक व्यवस्था, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक मूल्य—ये सभी तत्व नरौनी वंश की नई बसाहटों में भी दिखाई देंगे। नरवरगढ़ से मिली यह विरासत ही आगे चलकर उनकी नई पहचान का आधार बनेगी।

एक युग का अंत और नए युग का प्रारंभ

18वीं शताब्दी के अंत तक नरवरगढ़ का महत्व कम होने लगा। 1804 में सिंधिया वंश ने इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया और शिवपुरी को ग्वालियर रियासत की ग्रीष्मकालीन राजधानी बनाया। इसी दौरान नरवरगढ़ छोड़कर जाने वाले परिवारों में नरौनी वंश के लोग भी थे।

परंतु नरवरगढ़ से विदा होना अंत नहीं, बल्कि एक नई शुरुआत थी। यही वह ऐतिहासिक क्षण था जब नरवरगढ़ की विरासत को नए भूगोल में स्थानांतरित करने की यात्रा प्रारंभ हुई — एक ऐसी यात्रा जो नरवरगढ़ से नरेन्द्रपुर तक जाएगी और एक नई पहचान को जन्म देगी।

नरवरगढ़ किला, इस प्रकार, न केवल पत्थरों का एक ढाँचा था, बल्कि एक जीवंत सभ्यता का केंद्र था—एक ऐसा केंद्र जिसकी छाया में नरौनी वंश की पहचान ने आकार लिया और जिसकी विरासत को लेकर यह वंश नए क्षितिजों की ओर बढ़ा।

महान पूर्वज - दुर्गदेव एवं लबंगदेव

किसी भी वंश की नींव उसके संस्थापक पुरुषों के चरित्र, साहस और दूरदृष्टि पर टिकी होती है। नरौनी वंश के संदर्भ में यह नींव दो ऐसे व्यक्तित्वों ने रखी जिनके नाम आज भी श्रद्धा से लिए जाते हैं—**दुर्गदेव और लबंगदेव**। ये दोनों भाई न केवल एक वंश के प्रवर्तक थे, बल्कि एक ऐतिहासिक परिवर्तन के सूत्रधार भी थे, जिसने सैकड़ों वर्षों तक एक समुदाय की दिशा और दशा तय की।

परंपरा और स्थानीय स्मृतियों के अनुसार, दुर्गदेव और लबंगदेव परिहार वंश के उन राजपूत सरदारों में से थे, जिन्होंने लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व नरवरगढ़ किले को छोड़कर पूर्व की ओर प्रस्थान किया। यह निर्णय साधारण नहीं था। उस समय तक, उनका परिवार पीढ़ियों से नरवरगढ़ से जुड़ा हुआ था। वहाँ उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा थी, भूमि थी, और एक स्थापित

जीवन था। ऐसे में अपनी जड़ों से उखड़कर एक अनिश्चित यात्रा पर निकलना एक साहसिक, यदि नहीं तो एक दुस्साहसिक निर्णय था।



तो फिर प्रश्न उठता है—उन्होंने यह कदम क्यों उठाया? इतिहास के पन्ने इस प्रश्न का एकमात्र उत्तर नहीं देते। कुछ स्रोत इसे एक तीर्थयात्रा बताते हैं, जैसे कि वे धार्मिक स्थलों के दर्शन के लिए निकले थे। परंतु उस समय के राजनीतिक और सामाजिक संदर्भ को देखें तो यह यात्रा महज धार्मिक नहीं रही होगी।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ का भारत एक उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा था। मराठा शक्ति का विस्तार हो रहा था, स्थानीय राज्यों के बीच संघर्ष तेज हो रहे थे, और नए क्षेत्रों में बसने के अवसर भी खुल रहे थे। ऐसे में, दुर्गदेव और लबांगदेव जैसे अनुभवी सरदारों के लिए तीर्थयात्रा एक सम्मानजनक बहाना रहा होगा, जिसके पीछे वास्तविक उद्देश्य नए

क्षेत्रों की खोज, नई भूमि पर अपनी शक्ति स्थापित करने और अपने वंश के लिए एक सुरक्षित भविष्य तलाशने का रहा होगा।

यह यात्रा अकेले दो भाइयों की नहीं थी। राजपूत परंपरा के अनुसार, ऐसे अभियानों में पूरा परिवार, विश्वस्त सैनिक, और आवश्यक संसाधन साथ ले जाए जाते थे। दुर्गदेव और लबंगदेव के साथ भी उनके परिजन, कुछ चुनिंदा सैनिक और सेवक थे। यह एक छोटा काफिला था, लेकिन एक सुसंगठित और सुसज्जित काफिला, जो न केवल लंबी यात्रा की चुनौतियों का सामना कर सकता था, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर अपनी रक्षा भी कर सकता था।

उनके साथ ले जाए गए सामान में हथियार, रसद, आभूषण और कुछ पवित्र वस्तुएँ शामिल थीं। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण था वह अदृश्य सामान जो वे अपने साथ लेकर चले—अपनी वीरता की परंपरा, प्रशासनिक कौशल, सामाजिक मर्यादाओं का ज्ञान और नरवरगढ़ की स्मृतियाँ। ये ही वे चीजें थीं जो आगे चलकर नई बसाहटों की नींव बनीं।

दुर्गदेव और लबंगदेव के व्यक्तित्व के बारे में विस्तृत विवरण तो उपलब्ध नहीं है, परंतु उनके कर्मों से उनके चरित्र के कुछ पहलुओं का अनुमान लगाया जा सकता है। दुर्गदेव, जिसके नाम में ही ‘दुर्ग’ (किला) शब्द है, संभवतः सैन्य रणनीति और प्रबंधन में निपुण रहे होंगे। वहीं लबंगदेव, जिसके नाम का अर्थ ‘सुंदर’ या ‘आकर्षक’ से लिया जा सकता है,

संभवतः कूटनीति और सामाजिक समन्वय में माहिर रहे होंगे। एक भाई का हृदय युद्ध के मैदान में धड़कता होगा, तो दूसरे का मन शांति और स्थापना के कार्यों में।

इन दोनों ने मिलकर एक संतुलन बनाया होगा—एक का साहस और दूसरे की समझदारी, एक की तलवार और दूसरे की तरकीब। यही संतुलन उनकी यात्रा और बाद की स्थापना की सफलता का रहस्य रहा होगा।

उनका प्रस्थान नरवरगढ़ से एक विदाई थी, लेकिन विरासत का त्याग नहीं। वे अपने साथ अपना गौरव, अपनी परंपराएँ और अपनी पहचान लेकर चले। ‘नरवर’ उनकी पहचान का हिस्सा था और रहा। जैसे-जैसे वे आगे बढ़े, यह पहचान रूपांतरित होती गई, लेकिन समाप्त नहीं हुई। नरवर के वासी होने के नाते ही उनके वंशज आगे चलकर ‘नरावनी’ और फिर ‘नरौनी’ कहलाएं।

दुर्गदेव और लबंगदेव की यह यात्रा एक साधारण भौगोलिक स्थानांतरण नहीं थी। यह एक सभ्यता के बीजों को एक भूभाग से दूसरे भूभाग में ले जाने जैसा था। उन्होंने जो कुछ सीखा था, जो कुछ अनुभव किया था, वह सब एक बीज के रूप में अपने साथ ले गए, और पूर्वांचल की उपजाऊ धरती पर उसे रोप दिया।

आज, जब हम नरेन्द्रपुर और आसपास के गाँवों में नरौनी परिवारों को देखते हैं, तो हमें दुर्गदेव और लबंगदेव की उस दूरदृष्टि का एहसास होता है। उन्होंने न केवल अपने समय के

लिए एक सुरक्षित भविष्य तलाशा, बल्कि आने वाली सैकड़ों पीढ़ियों के लिए एक पहचान, एक विरासत और एक गौरव का मार्ग प्रशस्त किया।

ये दोनों भाई इतिहास के पन्नों में एक पंक्ति मात्र नहीं हैं। वे एक जीवंत परंपरा के प्रथम अध्याय हैं, जिसकी कहानी आज तक लिखी जा रही है। उनका साहस हमारी विरासत है, उनकी दूरदृष्टि हमारा मार्गदर्शन है, और उनका त्याग हमारा प्रेरणास्रोत है।

इस प्रकार, दुर्गदेव और लबंगदेव ने न केवल एक यात्रा प्रारंभ की, बल्कि एक अनवरत गाथा का आरंभ किया—एक ऐसी गाथा जो नरवरगढ़ की दीवारों से निकलकर पूर्वांचल के खेतों तक पहुँची, और जिसकी प्रत्येक पंक्ति में वीरता, बुद्धिमत्ता और स्थापना की कहानी समाई हुई है।

यात्रा वृत्तांत - मध्य भारत से हिमालय तक

दुर्गदेव और लबंगदेव का काफिला नरवरगढ़ से निकला तो एक अनजान भविष्य की ओर बढ़ रहा था। यह कोई सैन्य अभियान नहीं था, न ही कोई व्यापारिक यात्रा। यह एक ऐसी खोज थी जिसका लक्ष्य केवल धर्मस्थलों के दर्शन नहीं, बल्कि एक नई भूमि, नया आकाश और नया समाज तलाशना था। उनकी यात्रा का पहला पड़ाव था—उज्जैन।

उज्जैन, जिसे प्राचीन काल में अवंतिका कहा जाता था, न केवल एक पवित्र तीर्थस्थल था, बल्कि शिक्षा, व्यापार और संस्कृति का केंद्र भी था। यहाँ के महाकालेश्वर मंदिर में दर्शन करना हर यात्री का कर्तव्य था। दुर्गदेव और लबंगदेव ने भी यहाँ पूजा-अर्चना की होगी, लेकिन उनकी दृष्टि में उज्जैन का एक और महत्व था। यह शहर व्यापारिक मार्गों पर स्थित था, जहाँ से उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम के समाचार मिलते थे। संभवतः यहाँ उन्होंने पूर्व की ओर बसने के अवसरों के बारे में जानकारी जुटाई होगी, स्थानीय व्यापारियों और अन्य यात्रियों से बातचीत की होगी।

उज्जैन से आगे की यात्रा उत्तर की ओर मुड़ी। अब रास्ता कठिन होने लगा था। समतल मैदान धीरे-धीरे ऊबड़-खाबड़ पहाड़ियों में बदल रहे थे। यह वह समय था जब यात्रा का वास्तविक परीक्षण शुरू हुआ। पहाड़ी रास्ते, नदियों को पार करना, जंगली इलाकों से गुजरना—इन सबके लिए न केवल शारीरिक बल, बल्कि मानसिक दृढ़ता की भी आवश्यकता थी।

उत्तराखण्ड की ओर बढ़ते हुए वे हिमालय के दर्शनीय दृश्यों से रूबरू हुए। पर्वतों की ऊँची चोटियाँ, घने वन, और झारनों की धाराएँ—यह सब उनके लिए नया अनुभव था। नरवरगढ़

की पहाड़ियाँ अलग थीं, वहाँ की भूमि अलग थी। हिमालय की विशालता और उसकी पवित्रता ने उन पर गहरा प्रभाव डाला होगा।

यात्रा का एक महत्वपूर्ण पड़ाव था—बद्रीनाथ धाम। हिंदुओं के चार धामों में से एक बद्रीनाथ का धार्मिक महत्व तो सर्वविदित है ही, लेकिन उस समय इसका सामरिक और सामाजिक महत्व भी था। बद्रीनाथ के रास्ते में अनेक छोटे-बड़े मंदिर और धर्मशालाएँ थीं, जहाँ यात्री विश्राम करते थे और एक-दूसरे के अनुभव साझा करते थे। दुर्गदेव और लबंगदेव ने भी यहाँ कुछ दिन बिताए होंगे। बद्रीनाथ की पवित्रता ने न केवल उनकी आत्मा को शांति दी होगी, बल्कि इस कठिन यात्रा के लिए नैतिक बल भी प्रदान किया होगा।

बद्रीनाथ से आगे, यात्रा ने फिर एक नया मोड़ लिया। अब वे दो प्रसिद्ध स्थानों से होकर गए—लंगूरगढ़ी और भैरवगढ़ी मंदिर। लंगूरगढ़ी, जहाँ हनुमान जी की पूजा का विशेष महत्व है, और भैरवगढ़ी, जो भैरव नाथ को समर्पित है—ये दोनों स्थान न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थे, बल्कि स्थानीय समाज के केंद्र भी थे। इन मंदिरों के आसपास छोटे-छोटे गाँव बसे थे, जहाँ स्थानीय लोगों का जीवन साधारण परंतु संगठित था।

इन मंदिरों की यात्रा ने दुर्गदेव और लबंगदेव को एक महत्वपूर्ण सीख दी—कैसे धार्मिक केंद्र समाज के एकीकरण और संगठन में भूमिका निभा सकते हैं। यह सीख आगे चलकर उनकी अपनी बसाहटों में मंदिर निर्माण के महत्व को समझने में मददगार साबित हुई।

हिमालय की यात्रा के दौरान उन्हें अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। ऊँचाई पर साँस लेने में कठिनाई, ठंड, बर्फ और कठिन रास्ते—ये सभी बाधाएँ थीं। लेकिन इन बाधाओं ने उनकी दृढ़ता को और मजबूत किया। यही वह दृढ़ता थी जो आगे चलकर नई भूमि में बसने के संघर्ष में काम आई।

हिमालय से नीचे उतरते हुए, वे तराई के इलाकों में पहुँचे। यहाँ की भूमि उपजाऊ थी, जलवायु अनुकूल थी, और संसाधन प्रचुर थे। अब उनकी यात्रा का अंतिम चरण शुरू हुआ

—बलिया जिले की ओर।

बलिया उस समय एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था। गंगा और उसकी सहायक नदियों के कारण यहाँ की भूमि अत्यंत उपजाऊ थी। कृषि के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ थीं। यहाँ बसने का निर्णय केवल संयोग नहीं था। संभवतः यात्रा के दौरान मिली जानकारियों के आधार पर, या फिर स्थानीय सम्पर्कों के माध्यम से, उन्होंने बलिया को अपनी नई बसाहट के लिए चुना।

बलिया पहुँचने पर उन्होंने सबसे पहले देवढी को अपना ठिकाना बनाया। देवढी—नाम से ही स्पष्ट है कि यह स्थान देवताओं से जुड़ा था। यहाँ उन्होंने अपना पहला गढ़ बनाया, पहला मंदिर स्थापित किया, और पहली बार स्थानीय समाज से संवाद स्थापित किया।

यह यात्रा, जो नरवरगढ़ से शुरू हुई थी, देवढी में आकर अपने पहले मुकाम पर पहुँची। लेकिन यह यात्रा का अंत नहीं था—बल्कि एक नई यात्रा का प्रारंभ था। देवढी से आगे बसाहटों का विस्तार हुआ, नए गाँव बसे, और नई पीढ़ियों ने इस विरासत को आगे बढ़ाया।

दुर्गदेव और लबंगदेव की यह यात्रा केवल मीलों का सफर नहीं थी। यह एक सांस्कृतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक सफर थी। इस यात्रा में वे अपने साथ ले गए—नरवरगढ़ की स्मृतियाँ, उज्जैन की पवित्रता, हिमालय की दृढ़ता और बद्रीनाथ की आध्यात्मिकता। इन सबका सम्मिलित प्रभाव उनकी नई बसाहटों की सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना पर पड़ा।

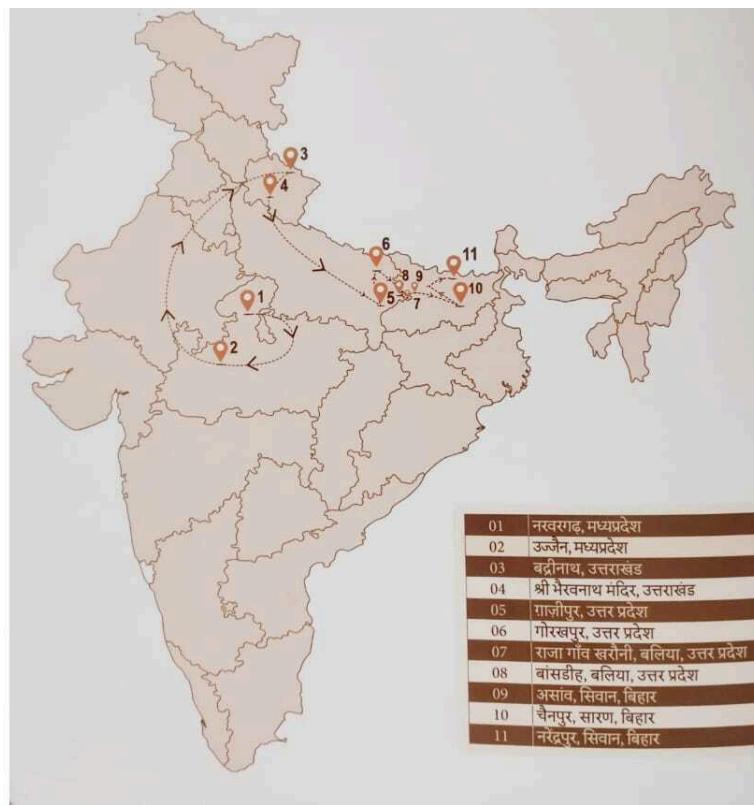
आज, जब हम नरौनी परिवारों को देखते हैं, तो हमें इस यात्रा की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। उनके रीति-रिवाज़, उनकी परंपराएँ, उनका समाज के प्रति दृष्टिकोण—इन सबमें वह यात्रा समाई हुई है, जो नरवरगढ़ से शुरू हुई और बलिया तक पहुँची।

इस प्रकार, यह यात्रा वृत्तांत केवल एक ऐतिहासिक घटना नहीं, बल्कि एक जीवंत स्मृति है, जो आज भी नरौनी समाज की पहचान का हिस्सा है। यह वह धागा है जो अतीत को

वर्तमान से जोड़ता है, और जिसके सहारे हम अपनी जड़ों तक पहुँच सकते हैं।

पूर्वांचल में प्रथम पदार्पण

बलिया जिले की धरती पर कदम रखते ही दुगंदिव और लबंगदेव के सामने एक नई दुनिया थी। यह नरवरगढ़ के पहाड़ी दुर्ग से एकदम भिन्न थी। यहाँ की भूमि समतल और विस्तृत थी, गंगा और उसकी सहायक नदियों का जाल बिछा हुआ था, और हरियाली चारों ओर फैली थी। यह उपजाऊ मैदानी इलाका जीवन और जीविका दोनों के लिए आशाजनक था, पर साथ ही यह एक नई चुनौती भी लेकर आया।



पहली चुनौती थी स्थानीय समाज से तालमेल बिठाना। यह क्षेत्र पहले से बसा हुआ था। यहाँ के निवासियों की अपनी सामाजिक संरचना, अपनी परंपराएँ और अपने नियम थे।

एक नए समूह का आगमन हमेशा संदेह और उत्सुकता दोनों पैदा करता है। दुर्गदिव और लबंगदेव को इस संवेदनशील स्थिति को समझदारी से संभालना था। उन्होंने आक्रामकता या दबदबा दिखाने के बजाय, सहयोग और समन्वय का मार्ग चुना। संभवतः उन्होंने स्थानीय मुखियाओं से बातचीत की, उन्हें अपने इरादों के बारे में आश्वस्त किया, और पारस्परिक सम्मान की नींव रखी।

दूसरी चुनौती थी जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति। सबसे पहले आवास की। उन्होंने देवढी में अपना पहला ठिकाना बनाया। यह नाम स्वयं ही इस बात का संकेत है कि उन्होंने सर्वप्रथम एक धार्मिक केंद्र की स्थापना को प्राथमिकता दी। देवढी, यानी देवस्थान। एक छोटा सा मंदिर, जो न केवल उनकी आस्था का केंद्र था, बल्कि नई बसाहट के लिए एक सांस्कृतिक बिंदु भी बना। मंदिर के आसपास ही आवासीय ढाँचे खड़े हुए। पहले कच्चे, फिर पक्के मकान बने।

जल की उपलब्धता किसी भी बसाहट के लिए सबसे महत्वपूर्ण है। उन्होंने कुओं का निर्माण किया। ये कुएँ न केवल पानी के स्रोत थे, बल्कि सामाजिक बिंदु भी बने। कुएँ के आसपास स्त्रियाँ मिलतीं, बातचीत होती, और समुदाय का एक अदृश्य बंधन मजबूत होता। कुछ परंपराओं के अनुसार, उन्होंने तालाब भी बनवाए, जो वर्षा के जल को संग्रहित करने के साथ-साथ सिंचाई का साधन भी बने।

तीसरी चुनौती थी सुरक्षा की। एक नई भूमि में, विशेषकर उस समय में, अपने समूह की सुरक्षा सर्वोपरि थी। दुर्गदिव और लबंगदेव ने एक छोटी सी गढ़ी का निर्माण किया। यह नरवरगढ़ जैसा विशाल किला तो नहीं था, परंतु एक मजबूत, सुरक्षित परिसर था, जिसमें परिवार और आवश्यक संसाधन सुरक्षित रह सकते थे। इस गढ़ी के चारों ओर एक परिधि

बनाई गई, जहाँ अनुयायी और सेवक रह सकते थे। इसने एक छोटे से किलेबंद गाँव का रूप ले लिया।

कृषि नई बसाहट की आर्थिक रीढ़ थी। उपजाऊ भूमि थी, पानी की उपलब्धता थी, तो फसल उगाना तर्कसंगत था। लेकिन यहाँ की मिट्टी और जलवायु नरवरगढ़ से भिन्न थी। उन्होंने स्थानीय किसानों से सीखा कि यहाँ कौन सी फसलें अच्छी होती हैं, कब बोनी और कब काटनी चाहिए। धीरे-धीरे उन्होंने खेती की नई तकनीकें सीखीं और अपनाईं। गेहूँ, धान, दलहन—ये मुख्य फसलें बनीं।

लेकिन दुर्गदेव और लबंगदेव की दृष्टि में केवल अपने परिवार की समृद्धि नहीं थी। उन्होंने एक व्यवस्थित समाज बनाने की नींव रखी। गढ़ी के भीतर एक छोटी सी पंचायत व्यवस्था विकसित हुई, जहाँ सामान्य मामलों का निपटारा होता था। एक ऐसी व्यवस्था जो न्यायप्रिय थी और स्थानीय प्रथाओं का सम्मान करती थी।

धीरे-धीरे देवढी एक स्थिर और सुसंगठित बसाहट बन गया। यह सफलता एक आधारशिला थी। इससे प्रेरणा लेकर उनके वंशजों ने आसपास के अन्य क्षेत्रों में भी बसना शुरू किया। बांसडीह, सुखपुरा जैसे गाँव अस्तित्व में आए। ये नई बसाहटें देवढी के अनुभव पर खरी उतरीं। हर नए गाँव में पहले मंदिर या धर्मशाला, फिर जल स्रोत, फिर आवास और फिर सुरक्षा व्यवस्था।

इन बसाहटों ने एक विशिष्ट सामाजिक ताना-बाना बुना। एक ओर तो नरौनी परिवारों की अपनी पहचान और परंपरा थी, दूसरी ओर वे स्थानीय समाज में पूरी तरह घुल-मिल गए। उन्होंने स्थानीय बोली बोलना सीखा, स्थानीय त्योहार मनाए, और स्थानीय रीति-रिवाजों

का सम्मान किया। पर साथ ही, उन्होंने अपनी राजपूत विरासत, अपनी वीरता की गाथाएँ और अपने पूर्वजों के आदर्श भी संजोकर रखे।

यह द्वैत—नई भूमि के साथ एकीकरण और पुरानी विरासत का संरक्षण—नरौनी पहचान का मूलमंत्र बन गया। देवढी की स्थापना इस लंबी यात्रा का पहला पड़ाव था, एक ऐसा पड़ाव जहाँ से न केवल एक परिवार, बल्कि एक समुदाय का भविष्य निर्माण हुआ। यहाँ से वह बीज अंकुरित हुआ जो आगे चलकर राजा गाँव खरौनी और फिर नरेन्द्रपुर जैसे विस्तृत समाज के रूप में फला-फूला।

इस प्रकार, पूर्वांचल में प्रथम पदार्पण केवल एक भौगोलिक घटना नहीं थी। यह एक सांस्कृतिक संवाद की शुरुआत थी, एक सामाजिक प्रयोग का आरंभ था, और एक नई पहचान के निर्माण का पहला चरण था। दुर्दिव और लबंगदेव ने जो नींव रखी, वह इतनी मजबूत थी कि सदियाँ बीत जाने के बाद भी, उस पर खड़ी इमारत आज भी सुरक्षित और गौरवशाली है।

बसाहटों का विस्तार - नरावनी से नरौनी तक

देवढ़ी से आगे का सफर

देवढ़ी में स्थापित हुए पैर जमाने के बाद, नरौनी परिवारों ने अपने अस्तित्व को मजबूत करना और अपने प्रभाव को विस्तृत करना शुरू किया। यह विस्तार केवल भूमि का नहीं था, बल्कि सामाजिक पहचान, आर्थिक स्थिरता और सांस्कृतिक प्रभाव का भी था। देवढ़ी एक सफल उदाहरण बन चुका था, और अब उस मॉडल को नए क्षेत्रों में दोहराने का समय आया था। इस प्रक्रिया में दो नए गाँवों का उदय हुआ - बांसडीह और सुखपुरा।

बांसडीह (बस्सीडीह): सामरिक स्थल का चयन

बांसडीह की स्थापना एक सोची-समझी रणनीति के तहत हुई। यह स्थान संभवतः देवढ़ी से कुछ दूरी पर, परंतु एक महत्वपूर्ण मार्ग या संसाधन के निकट चुना गया। 'बांसडीह' नाम स्वयं ही स्थानीय भूगोल या वनस्पति का संकेत देता है। इस नई बसाहट में भी वही मूल सिद्धांत अपनाए गए: सबसे पहले सामुदायिक जीवन के केंद्र के रूप में एक धार्मिक या सामाजिक स्थल की स्थापना, फिर जल स्रोतों का विकास, उसके बाद आवास निर्माण और अंततः एक बाड़ या परिधि द्वारा सुरक्षा का प्रबंध। बांसडीह ने देवढ़ी और अन्य

आसपास के गाँवों के बीच एक कड़ी का काम किया, जिससे पूरे क्षेत्र में संचार और व्यापार के मार्ग सुगम हुए।

सुखपुरा: समृद्धि का प्रतीक

सुखपुरा नाम ही इसकी अवधारणा को दर्शाता है - 'सुख' का गाँव। यह संभवतः एक ऐसे क्षेत्र में बसाया गया जहाँ भूमि विशेष रूप से उपजाऊ थी या जल की प्रचुरता थी। इस गाँव की योजना और व्यवस्था में आराम और समृद्धि को प्राथमिकता दी गई होगी। सुखपुरा ने नरौनी परिवारों की आर्थिक सफलता को प्रदर्शित किया और उनकी प्रशासनिक क्षमता को रेखांकित किया। यहाँ के निवासियों ने कृषि के साथ-साथ अन्य व्यवसायों को भी बढ़ावा दिया, जिससे गाँव एक संपन्न बस्ती के रूप में विकसित हुआ।

राजा गाँव खरौनी: तीन सौ घरों का गढ़

इस विस्तार यात्रा का चरमोत्कर्ष था राजा गाँव खरौनी की स्थापना। यह वह स्थान बना जहाँ नरौनी पहचान ने अपना सबसे सुदृढ़ और सुस्पष्ट रूप पाया। स्थानीय कहावत "राजा गाँव, खरौनी जहाँ बसे तीन सौ घर नरौनी" आज भी इसकी भव्यता और महत्व का बखान करती है।

गाँव की संरचना और महत्व:

राजा गाँव खरौनी केवल एक बस्ती नहीं, बल्कि एक स्वायत्त सामाजिक-आर्थिक इकाई थी। तीन सौ घरों का आँकड़ा केवल संख्या नहीं, बल्कि एक विशाल, स्वावलंबी समुदाय के होने का प्रमाण था। इतने परिवारों को एक स्थान पर बसाने, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने और सामंजस्य बनाए रखने के लिए उच्च कोटि की प्रशासनिक एवं सामाजिक योजना आवश्यक थी।

सामाजिक संगठन:

इस गाँव ने नरौनी समाज के भीतर एक स्पष्ट सामाजिक संरचना को जन्म दिया। विभिन्न परिवारों के बीच संबंध, भूमि के बँटवारे के नियम, सामुदायिक निर्णय लेने की प्रक्रिया, और विवादों के निपटारे के तरीके यहाँ विकसित हुए। यह एक लघु गणराज्य के समान था, जहाँ आंतरिक एकता और सहयोग सर्वोपरि था।

आर्थिक आधार:

खरौनी की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान थी, परंतु व्यापार और शिल्प को भी प्रोत्साहन मिला। गाँव के आसपास की उपजाऊ भूमि में विविध फसलें उगाई जाती थीं। जल प्रबंधन की उन्नत व्यवस्था ने सिंचाई को सुनिश्चित किया। गाँव में ही बुनकर, लोहार, बढ़ई और अन्य दस्तकारों ने अपना कार्य शुरू किया, जिससे एक आत्मनिर्भर आर्थिक चक्र बना।

पहचान का परिष्कार: नरावनी से नरौनी तक

इन बसाहटों के विस्तार के साथ-साथ ही इस समुदाय की पहचान में भी एक सूक्ष्म परंतु महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। मूल रूप से ‘नरावनी’ (नरवर के वासी) कहलाने वाले ये लोग स्थानीय उच्चारण और समय के प्रवाह में ‘नरौनी’ कहलाने लगे। यह केवल नाम का संक्षिप्तिकरण नहीं था, बल्कि एक नई, स्थानीकृत पहचान का निर्माण था।

उत्तराखण्ड में ‘रावत’ पहचान:

दिलचस्प बात यह है कि जब इस वंश के कुछ लोग उत्तराखण्ड की ओर गए या वहाँ से संपर्क में आए, तो वहाँ उनकी पहचान ‘रावत’ के रूप में स्थापित हुई। ‘रावत’ शब्द राजपूत समाज की एक उपाधि या पदवी भी है, जो प्रशासनिक या सैन्य जिम्मेदारी वाले व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है। यह इस बात का संकेत है कि उत्तराखण्ड के स्थानीय समाज

ने उन्हें एक सक्षम और जिम्मेदार प्रशासक के रूप में देखा और उनकी पहचान को उसी रूप में स्वीकार किया।

पूर्वांचल में 'नरौनी' पहचान:

वहाँ पूर्वांचल में, उनकी पहचान उनके मूल स्थान 'नरवर' से जुड़ी रही, जो बोलचाल में 'नरौनी' बन गई। यह पहचान मुख्यतः एक कुलनाम या गोत्रनाम के रूप में प्रसिद्ध हुई, जो उनकी ऐतिहासिक विरासत और भौगोलिक उत्पत्ति को दर्शाती थी।

वंश की शाखाएँ: एक सामूहिक विरासत

देवढ़ी, बांसडीह, सुखपुरा और राजा गाँव खरौनी की स्थापना के साथ ही नरौनी वंश की विभिन्न शाखाएँ भी स्पष्ट होने लगीं। प्रत्येक बसाहट ने वंश के भीतर एक अलग परिवार समूह या शाखा को केन्द्र बनाया। ये शाखाएँ एक ही मूल से निकली थीं, इसलिए उनमें मूलभूत सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्य समान थे, परंतु समय के साथ प्रत्येक ने अपनी सूक्ष्म परंपराएँ और सामाजिक गतिशीलता विकसित की।

इन शाखाओं ने आपसी विवाह संबंधों के जाल बुनकर एक व्यापक सामाजिक नेटवर्क खड़ा किया। यह नेटवर्क न केवल भावनात्मक एकता के लिए, बल्कि सामाजिक सुरक्षा, आर्थिक सहयोग और राजनीतिक प्रभाव के लिए भी महत्वपूर्ण था। इसने नरौनी समाज को एक लचीली, परंतु मजबूत सामूहिक शक्ति प्रदान की।

इस प्रकार, देवढ़ी से शुरू हुई बसाहटों की यह श्रृंखला अंततः राजा गाँव खरौनी के विशाल समुदाय में परिवर्तित हो गई। इस पूरी प्रक्रिया ने 'नरावनी' को 'नरौनी' बनाया - एक ऐसी पहचान जो न केवल ऐतिहासिक स्मृति से जुड़ी थी, बल्कि वर्तमान की सामाजिक वास्तविकता में भी जीवंत थी। यह विस्तार यात्रा स्थापना की गाथा थी, और इसी गाथा ने वह नींव तैयार की, जिस पर बाद में वंशीधर राय जैसे युगपुरुषों ने एक और भव्य महल का निर्माण किया।

वंशीधर राय - एक युग निर्माता

एक नए युग का सूत्रपात

जब कोई व्यक्तित्व अपने समय की सीमाओं को लाँघकर भविष्य की नींव रखता है, तो इतिहास उसे 'युग निर्माता' कहता है। बाबू वंशीधर राय नरौनी वंश के लिए ऐसे ही एक युग निर्माता सिद्ध हुए। उनका काल केवल एक व्यक्ति का जीवनकाल नहीं, बल्कि एक सम्पूर्ण समुदाय के पुनर्गठन, पुनर्प्रसार और पुनर्परिभाषण का काल था। देवढ़ी, बांसडीह और खरौनी में स्थापित हुए नींव के पथरों पर, वंशीधर राय ने एक भव्य और व्यवस्थित महल खड़ा करने का कार्य किया।

व्यक्तित्व एवं दृष्टि: एक नेता का चित्रण

वंशीधर राय के व्यक्तित्व के बारे में स्थानीय परंपराएँ और मौखिक इतिहास एक ऐसे पुरुष का चित्र खींचते हैं जो समय से आगे की सोच रखता था। वे केवल एक सामंत या जर्मीदार नहीं थे, बल्कि एक रणनीतिकार, प्रशासक और समाजशिल्पी थे। उनकी दृष्टि में संकीर्ण पारिवारिक हित नहीं, बल्कि एक विस्तृत कुल की समृद्धि और सुरक्षा थी। उन्होंने समझा

कि एक ही स्थान पर केन्द्रित रहने के बजाय, विस्तृत भूभाग में अपनी उपस्थिति दर्ज करना दीर्घकालीन सुरक्षा और प्रभाव का मार्ग है। यही सोच उनकी विस्तार नीति का आधार बनी।

नौ पुत्रों के माध्यम से विस्तारः एक अद्भुत रणनीति

वंशीधर राय की सबसे प्रसिद्ध और प्रभावशाली रणनीति थी अपने नौ पुत्रों को अलग-अलग क्षेत्रों में बसाकर एक साम्राज्यिक ढाँचा तैयार करना। यह केवल पारिवारिक विभाजन नहीं था, बल्कि एक सोची-समझी भू-राजनीतिक योजना थी। प्रत्येक पुत्र को एक नए गाँव का केंद्र बनाया गया, जहाँ उसने न केवल अपना परिवार बसाया, बल्कि एक स्वायत्त, परस्पर जुड़ी हुई इकाई का निर्माण किया। ये गाँव थे:

1. भरथुई
2. छितनपुर
3. लोहगजर
4. नरेन्द्रपुर
5. सेलरापुर
6. सरहरवा
7. विष्णुपुर
8. जामापुर
9. (नवाँ गाँव, जिसका उल्लेख विभिन्न स्रोतों में अलग-अलग है, यह संभवतः पचलख्या असांव से जुड़ा हुआ था)

एक सामाजिक-राजनीतिक खाँचे का निर्माण

इन नौ गाँवों की स्थापना ने केवल भौगोलिक विस्तार नहीं किया, बल्कि एक जटिल और सुदृढ़ सामाजिक-राजनीतिक ढाँचा (फ्रेमवर्क) बनाया।



सामाजिक संरचना:

इस ढाँचे ने नरौनी समाज को एक स्पष्ट पदानुक्रम और कर्तव्य-विभाजन प्रदान किया। प्रत्येक गाँव का मुखिया (जो वंशीधर राय का पुत्र या उसका वंशज था) स्थानीय प्रशासन, न्याय और सामाजिक समन्वय का दायित्व संभालता था। ये सभी मुखिया आपस में भाई या चचेरे भाई होते थे, जिससे केंद्र में एक मजबूत पारिवारिक एकता बनी रहती थी। इसने अन्य जातियों और समुदायों के लिए भी एक स्थिर सामाजिक वातावरण प्रदान किया, जो इस व्यवस्था के अंतर्गत सुरक्षित और समृद्ध हो सके।

राजनीतिक एकता:

सभी गाँव एक केन्द्रीय अधिकार, संभवतः वंशीधर राय स्वयं या उनके निर्देशित कुलगुरु, के प्रति उत्तरदायी थे। महत्वपूर्ण निर्णय, विशेषकर बाहरी खतरों या बड़े विवादों के संदर्भ में, सामूहिक रूप से लिए जाते थे। इससे छोटे-छोटे गाँवों का एक संघ तैयार हुआ जो सामूहिक रूप से शक्तिशाली था। यह ढाँचा बाहरी आक्रमणों या दबावों का मुकाबला करने में सक्षम था।

आर्थिक अन्तर्संबंध:

इन गाँवों के बीच आर्थिक आदान-प्रदान और सहयोग को प्रोत्साहित किया गया। एक गाँव में उपजाऊ भूमि हो सकती थी तो दूसरे के पास व्यापार मार्ग, तो तीसरे के पास विशिष्ट शिल्प कौशल। इस अन्तर्जाल ने पूरे क्षेत्र की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ और विविधतापूर्ण बनाया। आपसी विवाह संबंधों ने इस आर्थिक जुड़ाव को और मजबूत किया।

सांस्कृतिक ताना-बाना:

इस विस्तार ने एक साझी सांस्कृतिक पहचान को भी गढ़ा। सभी गाँवों में मनाए जाने वाले त्योहार (जैसे होली, दशहरा), पूजा-पद्धतियाँ और सामाजिक रीति-रिवाज समान थे। इससे एक विशाल भौगोलिक क्षेत्र में 'नरौनी' सांस्कृतिक इकाई का निर्माण हुआ।

प्रशासनिक दक्षता और न्यायिक व्यवस्था

वंशीधर राय का शासन केवल शक्ति पर आधारित नहीं था, बल्कि न्याय और प्रशासनिक कुशलता पर टिका था। उन्होंने एक ऐसी न्यायिक व्यवस्था विकसित की जो स्थानीय, सुलभ और निष्पक्ष थी।

स्थानीय पंचायतें:

प्रत्येक गाँव में स्थानीय पंचायतें कार्य करती थीं, जो छोटे-मोटे झगड़ों और विवादों का निपटारा करती थीं। इन पंचायतों में गाँव के बुजुर्ग और सम्मानित लोग शामिल होते थे।

केंद्रीय न्यायिक सभा:

गंभीर मामले, जैसे गाँवों के बीच का विवाद या गंभीर अपराध, वंशीधर राय या उनके द्वारा नियुक्त एक केंद्रीय सभा के समक्ष प्रस्तुत किए जाते थे। निर्णय लेते समय प्रथा, नैतिकता और सामाजिक सद्व्यवहार का ध्यान रखा जाता था।

दंड और सुधार:

दंड देने का उद्देश्य केवल दमन नहीं, बल्कि सुधार और सामाजिक संतुलन बहाल करना होता था। जुर्माना, सामुदायिक सेवा, या सामाजिक बहिष्कार जैसे दंड प्रचलित थे।

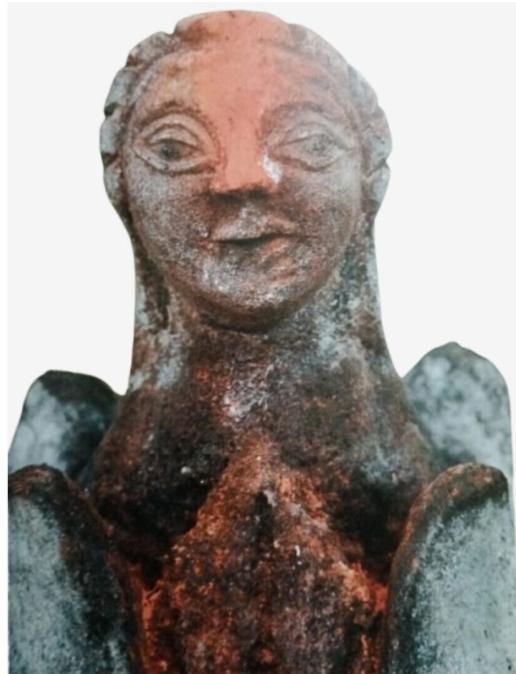
वंशीधर राय के इस दूरदर्शी नेतृत्व ने नरौनी वंश को एक संगठित, स्वावलंबी और प्रभावशाली सामाजिक-राजनीतिक इकाई के रूप में स्थापित किया। उन्होंने जो खाँचा तैयार किया, वह उनकी मृत्यु के बाद भी कई पीढ़ियों तक चला और नरौनी समाज को उथल-पुथल के दौर में भी स्थिरता प्रदान की। वे वास्तव में एक युग के संस्थापक थे, जिनकी छाया में एक विरासत ने न केवल जीवित रहना, बल्कि फलना-फूलना सीखा।

नरेन्द्रपुर की स्थापना - एक नए युग का आरंभ

शक्ति राय: संस्थापक पुरुष का आगमन

वंशीधर राय द्वारा स्थापित साम्राज्यिक ढाँचे में, नरेन्द्रपुर एक विशेष स्थान रखता है। इस नए गाँव की नींव रखने का दायित्व सौंपा गया था शक्ति राय को। वे वंशीधर राय के ही वंशज थे, और उनका चयन इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए उनकी योग्यता, नेतृत्व क्षमता और विश्वसनीयता को दर्शाता है। शक्ति राय के व्यक्तित्व में एक संस्थापक के सभी गुण विद्यमान थे—साहस, दूरदृष्टि, संगठन कौशल और लोगों को साथ ले चलने की क्षमता। वे

न केवल एक योद्धा या जमींदार थे, बल्कि एक दृष्टा भी थे, जो एक खाली जमीन में एक संपूर्ण, जीवंत समुदाय के बीज देख सकते थे।



1715 ईस्वी: ऐतिहासिक संदर्भ और महत्व

नरेन्द्रपुर की स्थापना का वर्ष 1715 ईस्वी माना जाता है। यह भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण काल था। दिल्ली में मुगल साम्राज्य अपनी शक्ति खो रहा था, जबकि मराठा शक्ति का उदय हो रहा था। पूर्व में बंगाल और बिहार में नवाबों का शासन था, और यूरोपीय कंपनियाँ अपने व्यापारिक ठिकाने मजबूत कर रही थीं। ऐसे समय में, एक नए गाँव की स्थापना केवल एक स्थानीय घटना नहीं, बल्कि एक राजनीतिक कथन था। इसने इस क्षेत्र में नरौनी प्रभाव की निरंतरता और उनकी स्वायत्त स्थापना की क्षमता को प्रदर्शित

किया। 1715 का यह निर्णय एक सुरक्षित भविष्य की खोज और अपनी सांस्कृतिक विरासत को एक नई भूमि पर स्थापित करने की इच्छा का प्रतीक था।

स्थान चयन की कसौटियाँ: जल, भूमि, सुरक्षा

शक्ति राय ने नरेन्द्रपुर के स्थान का चुनाव कोई संयोग से नहीं, बल्कि गहन विचार और व्यावहारिक कसौटियों पर किया। उस समय के लिए एक आदर्श बसाहट स्थल के तीन मुख्य सिद्धांत थे:

1. जल की प्रचुरता: सबसे पहली और महत्वपूर्ण शर्त थी पीने और सिंचाई के लिए पर्याप्त जल की उपलब्धता। नरेन्द्रपुर के आसपास प्राकृतिक जलस्रोत, नदियाँ या भूजल स्तर उच्च रहा होगा। कुओं और तालाबों का निर्माण करके इस आवश्यकता को पूरा किया गया।
2. उपजाऊ भूमि: दूसरी कसौटी थी कृषि के लिए अनुकूल भूमि। गाँव की स्थापना ऐसे स्थान पर हुई जहाँ की मिट्टी उर्वर थी और विविध प्रकार की फसलें उगाई जा सकती थीं। यह गाँव की आर्थिक आत्मनिर्भरता की आधारशिला थी।
3. सामरिक सुरक्षा: तीसरा और अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू था सुरक्षा। गाँव का स्थान ऐसा होना चाहिए था जहाँ से आसानी से आक्रमण न हो सके और जिसकी रक्षा की जा सके। संभवतः यह कुछ प्राकृतिक ऊँचाई पर, या ऐसे स्थान पर था जहाँ चारों ओर नजर रखी जा सके। एक छोटी गढ़ी या परिधि बनाकर सुरक्षा को सुनिश्चित किया गया होगा।

‘नरीनपुर’ से ‘नरेन्द्रपुर’ नामकरण की कथा

गाँव का प्रारंभिक नाम ‘नरीनपुर’ था। स्थानीय बुजुर्ग आज भी इसी नाम का उच्चारण करते हैं, जो इसके मूल रूप की याद दिलाता है। ‘नरीन’ शब्द की उत्पत्ति स्पष्ट नहीं है,

परंतु यह संभव है कि यह किसी स्थानीय विशेषता, या शक्ति राय के किसी उपनाम या शीर्षक से जुड़ा हो।

समय के साथ, यह नाम बदलकर 'नरेन्द्रपुर' हो गया। यह परिवर्तन महज ध्वनि का नहीं, बल्कि अर्थ का था। 'नरेन्द्र' संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है 'मनुष्यों में श्रेष्ठ' या 'राजा'। यह नामकरण गाँव के बढ़ते हुए महत्व, प्रभाव और गौरव को दर्शाता है। यह संकेत करता है कि यह स्थान केवल एक बस्ती नहीं, बल्कि एक प्रमुख केंद्र के रूप में उभर रहा था। 'पुर' प्रत्यय शहर या नगर का बोध कराता है। इस प्रकार, नरेन्द्रपुर नाम ने इस स्थान को एक महत्वपूर्ण मानव बस्ती के रूप में चिह्नित किया।

प्रारंभिक संरचनाएँ: किला, मंदिर, जलाशय

शक्ति राय ने गाँव की नींव केवल घर बनाकर नहीं, बल्कि उन संरचनाओं का निर्माण करके रखी जो किसी भी स्थायी और समृद्ध समाज की रीढ़ होती हैं।

1. गढ़ी या किला: सबसे पहले एक मजबूत गढ़ी का निर्माण किया गया। यह नरवरगढ़ जैसा विशाल किला तो नहीं था, परंतु एक सुरक्षित दुर्ग था जहाँ आपातकाल में गाँव के लोग शरण ले सकते थे और जहाँ से प्रशासन चलता था। यह गढ़ी सत्ता और सुरक्षा का प्रतीक थी।

2. मंदिर: किसी भी नई बसाहट में सबसे पहले धार्मिक केंद्र की स्थापना की जाती थी। नरेन्द्रपुर में भी एक मंदिर बनाया गया, संभवतः शिव या दुर्गा का। यह मंदिर न केवल आस्था का केंद्र था, बल्कि सामुदायिक जीवन का केन्द्रबिंदु भी बना। यहाँ लोग इकट्ठा होते, त्योहार मनाते और सामुदायिक निर्णय लेते।

3. जलाशय (पोखर) एवं कुएँ: जल प्रबंधन को प्राथमिकता दी गई। एक या एक से अधिक बड़े तालाब (पोखर) बनवाए गए, जो वर्षा के जल को संग्रहित करते थे। ये पोखर सिंचाई,

पशुओं के पानी और सामान्य उपयोग के लिए थे। साथ ही, पीने के पानी के लिए गहरे कुएँ खुदवाए गए। इस व्यवस्था ने गाँव को जल संकट से मुक्त रखा।

4. आवासीय एवं सार्वजनिक स्थल: गढ़ी और मंदिर के आसपास, एक व्यवस्थित ढंग से आवासीय क्वार्टर बनाए गए। साथ ही, एक चौपाल या सार्वजनिक चबूतरा भी बनाया गया होगा, जहाँ गाँव के लोग बैठकर विचार-विमर्श कर सकें।

शक्ति राय की इस दूरदृष्टि और योजनाबद्धता ने नरेन्द्रपुर को केवल एक गाँव नहीं, बल्कि एक ऐसा केंद्र बना दिया जो आने वाले सैकड़ों वर्षों तक नरौनी वंश की सामाजिक, सांस्कृतिक और प्रशासनिक गतिविधियों का हृदयस्थल बना रहा। इसकी स्थापना ने वंशीधर राय द्वारा बिछाए गए ढाँचे में एक मजबूत और चमकता हुआ पथर जड़ दिया। यहाँ से एक नए युग का आरंभ हुआ, जिसमें नरेन्द्रपुर ने न केवल अपना, बल्कि आसपास के क्षेत्रों का भी भाग्य निर्धारित किया।

ब्रिटिश विरोध की प्रथम चिंगारी

ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रभुत्व और प्रभाव

अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध भारत के लिए एक नई और चुनौतीपूर्ण शक्ति के उदय का साक्षी बना। ईस्ट इंडिया कंपनी, जो एक व्यापारिक उद्यम के रूप में शुरू हुई थी, अब एक साम्राज्यवादी राजनीतिक शक्ति के रूप में स्थापित हो चुकी थी। प्लासी और बक्सर के युद्धों के बाद, कंपनी ने बंगाल और बिहार पर अपना आर्थिक और प्रशासनिक नियंत्रण स्थापित कर लिया था। इस नियंत्रण का एक प्रमुख साधन था—कर व्यवस्था। कंपनी ने जमींदारों और स्थानीय प्रशासकों से भारी कर वसूलना शुरू किया, ताकि अपने खजाने को भरा जा सके और यूरोप में होने वाले युद्धों का खर्च निकाला जा सके। यह कर अक्सर मनमाना, अन्यायपूर्ण और दमनकारी होता था। नरौनी परिवार, जो अब नरेन्द्रपुर, असांव और पचलख जैसे गाँवों में प्रभावशाली जमींदार थे, इस नई व्यवस्था के सीधे संपर्क में आए।

बाबू वीरा राय: अदम्य साहस का प्रतीक

इस संकट की घड़ी में, नरौनी वंश ने एक ऐसे नेता को उभरते देखा जिसने अन्याय के सामने झुकने से इनकार कर दिया। वे थे बाबू वीरा राय। वे वंशीधर राय के सबसे छोटे पुत्र थे, और जैसा कि अक्सर होता है, सबसे छोटे को सबसे बड़ी जिम्मेदारी और सबसे कठिन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। वीरा राय का चरित्र उनके नाम के अनुरूप था — ‘वीर’। वे न केवल शारीरिक रूप से बलशाली थे, बल्कि उनमें नैतिक साहस और दृढ़ संकल्प की अद्भुत शक्ति थी। उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा थोपी गई अन्यायपूर्ण कर

प्रणाली को समझा और उसका विरोध करने का निर्णय लिया। यह निर्णय आसान नहीं था। कंपनी के पास अनुशासित सेना, आधुनिक हथियार और कूटनीतिक धूर्तता थी। लेकिन वीरा राय के लिए, अपने लोगों पर लगाए गए अत्याचारी कर का भुगतान करना, उनके प्रति विश्वासघात के समान था।

अन्यायपूर्ण कर प्रणाली का विरोधः एक स्पष्ट इनकार

वीरा राय ने कंपनी के अधिकारियों को स्पष्ट संदेश भेजा कि वे इस नई और असंगत कर व्यवस्था को स्वीकार नहीं करेंगे। उनका तर्क सरल और न्यायसंगत था: भूमि उनकी थी, उस पर खेती करने वाले किसान उनके थे, और राजस्व का निर्धारण स्थानीय परिस्थितियों और परंपरा के अनुसार होना चाहिए, न कि किसी विदेशी कंपनी की मनमर्जी से। इस इनकार ने कंपनी के अधिकारियों को चिढ़ा दिया। एक 'छोटे से जमींदार' द्वारा उनकी सत्ता को चुनौती दिया जाना उनके लिए असहनीय था। वीरा राय का यह विरोध केवल एक वित्तीय मामला नहीं रहा; यह सत्ता के प्रतीकात्मक संघर्ष में बदल गया। यह गाँव की आज़ादी और स्वाभिमान बनाम औपनिवेशिक लूट का संघर्ष था।

सिवान के शासक अली खान से संघर्षः स्थानीय गठजोड़ की चुनौती

वीरा राय की चुनौती केवल अंग्रेजों तक सीमित नहीं थी। स्थानीय स्तर पर भी, अन्य शक्तिशाली खिलाड़ी थे जो नरौनी प्रभाव के विस्तार से असहज थे। ऐसे ही एक शक्ति थे सिवान (तत्कालीन सीवान) के शासक अली खान। संभवतः अंग्रेजों ने या तो अली खान को उकसाया, या फिर उन्होंने स्वयं ही इस अवसर को नरौनी प्रभाव को कमज़ोर करने के

लिए उपयुक्त समझा। अली खान ने असांव पर आक्रमण कर दिया। असांव उस समय नरौनी परिवार का एक महत्वपूर्ण गढ़ था, जहाँ वीरा राय का प्रभाव था।

असांव किले की रक्षा की गाथा: वीरता और रणनीति

अली खान के आक्रमण की खबर मिलते ही, वीरा राय ने अपने विश्वस्त सैनिकों और गाँव के युवाओं को संगठित किया। असांव का किला एक मजबूत स्थान था, लेकिन शत्रु की सेना संख्या में अधिक थी। इस युद्ध के बारे में स्थानीय किंवदंतियाँ एक रोमांचक और वीरतापूर्ण संघर्ष का वर्णन करती हैं। वीरा राय ने केवल बाहरी दीवारों पर ही नहीं, बल्कि मनोबल के मोर्चे पर भी लड़ाई लड़ी। उन्होंने अपने लोगों को प्रेरित किया कि वे अपने घर, अपनी भूमि और अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं। कहा जाता है कि उन्होंने बेहतरीन रणनीति अपनाई। संभवतः रात के अंधेरे में छापामार हमले किए, शत्रु की रसद आपूर्ति काटी, और किले की दीवारों पर मजबूती से डटे रहे। उनकी वीरता और नेतृत्व से प्रेरित होकर, असांव के रक्षकों ने अद्भुत शौर्य दिखाया। अली खान की सेना, एक दृढ़ संकल्पित और उच्च मनोबल वाले प्रतिरोध के सामने, अपना आक्रमण जारी नहीं रख सकी। अंततः, उन्हें पीछे हटना पड़ा। असांव किले की रक्षा न केवल एक सैन्य जीत थी, बल्कि एक प्रतीकात्मक जीत थी। इसने यह साबित कर दिया कि नरौनी वंश अन्याय के सामने झुकने वाला नहीं है, चाहे विरोधी कोई भी हो।

वीरा राय के इस संघर्ष ने नरौनी इतिहास में एक नया अध्याय शुरू किया—प्रतिरोध का अध्याय। उन्होंने जो चिंगारी सुलगाई, वह आगे चलकर उनके पुत्र दीरगा राय के समय में एक ज्वाला बन गई। वीरा राय का नाम इतिहास के पन्नों में शायद बड़े अक्षरों से न लिखा गया हो, लेकिन नरेन्द्रपुर और असांव की मिट्टी में, और नरौनी वंश की स्मृति में, वह एक अमर वीर के रूप में जीवित है। उन्होंने यह सिखाया कि सच्चा साहस अपनी शक्ति से अधिक शक्तिशाली दुश्मन के सामने खड़े होने में नहीं, बल्कि अन्याय और दमन के सामने खड़े होने में है।

दीरगा राय - अंतिम संघर्ष और बलिदान

पिता के उत्तराधिकारी के रूप में दीरगा राय

वीरा राय के निधन के पश्चात, असांव और पचलख की ज़िम्मेदारी और उनकी विरासत उनके पुत्र दीरगा राय के कंधों पर आ गई। एक ऐसे पिता का पुत्र होना, जिसने ब्रिटिश कर व्यवस्था का विरोध किया और सिवान के शासक को परास्त किया, अपने आप में एक बड़ी चुनौती थी। दीरगा राय को न केवल अपने पिता के साहस और दृढ़ संकल्प को बनाए रखना था, बल्कि एक और अधिक शक्तिशाली और संगठित औपनिवेशिक ताकत से निपटना था। उनके चरित्र में पिता की वीरता तो थी ही, साथ ही एक गहरी राजनीतिक समझ और अपने लोगों के प्रति अटूट निष्ठा भी थी। वे समझते थे कि अंग्रेज़ अब केवल व्यापारी नहीं रह गए थे; वे शासक बन चुके थे, और उनकी शक्ति का मुकाबला करने के लिए केवल हथियार ही नहीं, बल्कि रणनीति और जनसमर्थन भी चाहिए।

ब्रिटिश कर व्यवस्था के प्रति अडिग रवैया: सिद्धांतों पर अटल

दीरगा राय ने अपने पिता के मार्ग का अनुसरण किया और ब्रिटिश कर व्यवस्था को स्वीकार करने से स्पष्ट इनकार कर दिया। उनका मानना था कि यह कर लगाने का अधिकार स्थानीय परंपरा और आपसी सहमति पर आधारित होना चाहिए, न कि किसी विदेशी सत्ता की मनमानी पर। उन्होंने अंग्रेज़ अधिकारियों के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि वे अपने लोगों को लूटने वाली इस व्यवस्था का हिस्सा नहीं बनेंगे। यह इनकार केवल पैसे का मामला नहीं था; यह स्वायत्तता, स्वाभिमान और स्थानीय प्रभुसत्ता का प्रश्न था। दीरगा राय का यह अडिग रुख अंग्रेज़ी प्रशासन के लिए एक खुली चुनौती थी। उन्हें लगा कि यदि एक

‘छोटा सा ज़मींदार’ उनके आदेशों की अवहेलना कर सकता है, तो यह एक खतरनाक उदाहरण स्थापित करेगा और अन्यों को भी विद्रोह के लिए प्रेरित करेगा।

मैरवा में ब्रिटिश सैन्य टुकड़ी का संहार: एक रात का प्रतिशोध

अंग्रेज़ों ने दीरगा राय को सबक सिखाने और कर वसूली को जबरन लागू करने का निर्णय लिया। उन्होंने अपनी एक सैन्य टुकड़ी को मैरवा (या मेड़वा) नामक स्थान पर भेजा, जो असांव के निकट था और संभवतः नरौनी क्षेत्र की सीमा पर स्थित था। यह टुकड़ी एक तरह से धमकी और ताकत के प्रदर्शन के लिए वहाँ डेरा डाले हुए थी, ताकि दीरगा राय और उनके समर्थक डर जाएँ और आत्मसमर्पण कर दें।

परंतु दीरगा राय डरने वाले नहीं थे। उन्होंने इस सैन्य उपस्थिति को एक सीधी आक्रमण की तैयारी और अपने क्षेत्र की संप्रभुता का उल्लंघन समझा। स्थानीय किंवदंतियों के अनुसार, दीरगा राय ने एक साहसिक और सटीक जवाबी कार्रवाई की योजना बनाई। एक अंधेरी रात को, जब ब्रिटिश सैनिक अपने तंबूओं में आराम कर रहे थे और पहरेदार भी लापरवाह हो गए थे, दीरगा राय अपने चुनिंदा और विश्वस्त योद्धाओं के साथ उनके डेरे पर टूट पड़े। यह हमला इतना आकस्मिक और जोरदार था कि ब्रिटिश सैनिक संगठित होकर प्रतिरोध भी नहीं कर पाए। कहा जाता है कि पूरी की पूरी टुकड़ी का सफाया कर दिया गया।

इस घटना की भयावहता और प्रतीकात्मकता को दर्शने के लिए, कुछ कथाओं में यह भी उल्लेख है कि दीरगा राय ने मारे गए सैनिकों के सिर काटकर असांव किले की दीवारों पर लटका दिए थे। यह एक क्रूर प्रतीक था, जो अंग्रेज़ों के लिए एक स्पष्ट संदेश था: इस भूमि पर उनकी सत्ता को चुनौती दी जा सकती है, और उनके आक्रमण का जवाब मृत्यु होगी।

इस कार्वाई ने दीरगा राय को एक दुस्साहसी विद्रोही के रूप में चिह्नित कर दिया, जिसे किसी भी कीमत पर दबाना आवश्यक था।

दुर्भाग्यपूर्ण बीमारी और गिरफ्तारी: भाग्य की विडंबना

इस जबरदस्त सफलता के बाद, दीरगा राय का मनोबल अवश्य ही बहुत ऊँचा रहा होगा। परंतु भाग्य को कुछ और ही मंजूर था। इसी दौरान, वे एक गंभीर बीमारी के शिकार हो गए। स्थानीय किंवदंतियों के अनुसार यह लकवा (पक्षाघात) था। यह बीमारी इतनी गंभीर थी कि वे शारीरिक रूप से लाचार हो गए। अपनी इस दुर्बल अवस्था में वे असांव के किले में ही थे, लेकिन अब उनकी सैन्य क्षमता और गतिशीलता समाप्त हो चुकी थी।

यही वह कमजोर क्षण था, जिसका फायदा अंग्रेज़ों ने उठाया। उन्होंने एक बड़ी और भारी सशस्त्र सेना भेजकर असांव को घेर लिया। दीरगा राय, अपनी हालत में, प्रभावी प्रतिरोध का नेतृत्व नहीं कर सकते थे। कहा जाता है कि उन्हें किले से निकालकर कहीं और ले जाया गया, ताकि वे पकड़ में न आएँ। लेकिन दुर्भाग्य से, अपने ही कुछ लोगों की सूचना के आधार पर, अंग्रेज़ों ने उनका पता लगा लिया। कुल के भीतर हुए इस विश्वासघात ने दीरगा राय की दुर्गति सुनिश्चित कर दी। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

कालापानी की सजा और वीरगति: एक शहीद का अंत

दीरगा राय के विरुद्ध सैन्य टुकड़ी के विनाश और ब्रिटिश सत्ता के प्रति अवमानना के गंभीर आरोप लगाए गए। एक विद्रोही नेता के रूप में, उन्हें दंडित करना अंग्रेज़ों के लिए जरूरी था, ताकि भविष्य में कोई और ऐसा साहस न कर सके। उन पर मुकदमा चलाया गया और

उन्हें ‘कालापानी’ की सजा सुनाई गई—अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह की जेल में आजीवन कारावास।

उस समय कालापानी की सजा मृत्यु के समान थी। दूरस्थ द्वीपों की कठोर यातनाएँ, घटिया खानपान, जलवायु के प्रतिकूल प्रभाव और शारीरिक शोषण से बच पाना लगभग असंभव था। दीरगा राय, जो पहले से ही लकवे से पीड़ित थे, उस कठिन यात्रा और कारावास को सहन नहीं कर पाए। उनकी मृत्यु कारागार में ही हो गई। वे निःसंतान थे, इसलिए उनकी सीधी वंश परंपरा समाप्त हो गई।

परंतु उनका बलिदान व्यर्थ नहीं गया। दीरगा राय की शहादत नरौनी वंश के इतिहास में स्वर्णक्षरों में अंकित हो गई। वे केवल एक जमींदार नहीं रहे, बल्कि एक प्रतीक बन गए—अन्याय के विरुद्ध अंतिम साँस तक लड़ने का प्रतीक। उनकी कहानी ने यह सिद्ध किया कि सत्ता के सामने झुक जाना आसान है, लेकिन अपने सिद्धांतों और अपने लोगों की रक्षा के लिए लड़ते हुए मर जाना अमर हो जाना है। उनका नाम आज भी नरेन्द्रपुर और असांव में श्रद्धा से लिया जाता है, और उनका साहस आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

II

भाग दो: सामाजिक-सांस्कृतिक योगदान

यह भाग परिवार के सामाजिक और सांस्कृतिक योगदान, परंपराओं, और समाज में निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिकाओं का विस्तार से वर्णन करता है।

हथुआ राज्य में नरौनी भूमिका

धज्जू सिंहः एक राजनीतिक रणनीतिकार

जबकि दीरगा राय का संघर्ष सीधे तौर पर अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध था, नरौनी वंश की एक अन्य शाखा ने एक अलग मोर्चे पर—स्थानीय राजनीति की जटिल गलियों में—अपनी दूरदर्शिता और नैतिक साहस का परिचय दिया। इस शाखा के प्रमुख थे धज्जू सिंह, जो भरथुई (भरवूई) गढ़ के नरौनी सरदार थे। वे केवल एक योद्धा नहीं थे; उनमें एक कुशल राजनीतिक रणनीतिकार का भी दम था। वे समझते थे कि कभी-कभी तलवार से अधिक प्रभावशाली, कूटनीति और न्याय के सिद्धांतों पर अटल रहना होता है। उनकी इसी

विशेषता ने उन्हें हथुआ राज्य के उथल-पुथल भरे इतिहास में एक निर्णायिक भूमिका निभाने के योग्य बनाया।



हथुआ के राजा बसंत साही की हत्या: एक परिवारिक कलह की पृष्ठभूमि

हथुआ राज्य (वर्तमान बिहार के सीतामढ़ी जिले में) उस समय एक महत्वपूर्ण जमींदारी थी। वहाँ के राजा बसंत साही एक समृद्ध शासक थे, लेकिन उनके भाई फतेह साही के मन में सत्ता की लालसा कुंडली मारे बैठी थी। इस लालसा ने अंततः एक भयानक परिणति ली। फतेह साही ने अपने ही बड़े भाई बसंत साही की हत्या कर दी। यह घटना केवल एक हत्या नहीं थी; यह राज्य की सत्ता के लिए एक क्रूर संघर्ष का प्रारंभ थी, जिसमें निर्दोषों का जीवन दाँव पर लगा हुआ था। इस हत्या के बाद, सत्ता फतेह साही के हाथ में आ गई,

लेकिन एक वैध उत्तराधिकारी—राजा बसंत साही का नवजात पुत्र महेश साही—जीवित था।

विधवा रानी और शिशु महेश साही को शरणः धर्म और न्याय का आह्वान

फतेह साही के लिए, इस नवजात शिशु का अस्तित्व उसकी सत्ता के लिए सबसे बड़ा खतरा था। विधवा रानी को इस खतरे का अहसास था। अपने पुत्र की जान बचाने और उसके वैध अधिकार की रक्षा के लिए, उन्होंने हथुआ से पलायन करने का निर्णय लिया। लेकिन सवाल था—शरण कहाँ? ऐसे समय में, जब सत्ता परिवर्तन के चलते अधिकांश लोग नए शासक से डरकर दूरी बनाना चाहते थे, धज्जू सिंह ने अलग रास्ता चुना।

रानी अपने शिशु पुत्र को लेकर भरथुई गढ़ पहुँचीं और धज्जू सिंह के सामने शरण की याचना की। यह एक विषम परिस्थिति थी। शरण देने का अर्थ था हथुआ के नए और क्रूर शासक फतेह साही से सीधा टकराव। इसका अर्थ था अपने क्षेत्र में अनावश्यक संघर्ष और खतरा मोल लेना। परंतु धज्जू सिंह ने इन राजनीतिक गणनाओं से ऊपर उठकर निर्णय लिया। उनके लिए, यह एक धर्मसंकट था। एक विधवा और एक निर्दोष शिशु की रक्षा करना, उनकी नैतिक और राजपूत परंपरा का कर्तव्य था। उन्होंने न केवं रानी और राजकुमार को शरण दी, बल्कि पूरी सुरक्षा और सम्मान का आश्वासन भी दिया।

ब्रिटिश प्रशासन से पत्राचार की कूटनीति: कानून का सहारा

धज्जू सिंह केवल शरण देकर ही संतुष्ट नहीं हुए। वे जानते थे कि महेश साही को उसका वैध अधिकार दिलाना ही स्थायी समाधान होगा। उन्नीसवीं शताब्दी में, अंग्रेजी प्रशासन जमींदारी विवादों में मध्यस्थता और निर्णय का एक (हालाँकि स्वार्थी) स्रोत बन चुका था। धज्जू सिंह ने कूटनीतिक रूप से ब्रिटिश अधिकारियों के साथ पत्राचार शुरू किया। उन्होंने

हथुआ में हुई हत्या और अवैध सत्ता परिवर्तन का विवरण प्रस्तुत किया और वैध उत्तराधिकारी महेश साही के हक की माँग की।

यह एक जोखिम भरा कदम था। अंग्रेज अक्सर स्थानीय झगड़ों में मजबूत पक्ष का साथ देते थे। फतेह साही सत्ता में था। लेकिन धज्जू सिंह ने कानूनी औपचारिकताओं और वैधानिक तर्कों का सहारा लिया। उनकी कोशिश थी कि अंग्रेजों को यह समझाया जाए कि एक स्थिर और वैध शासक ही दीर्घकाल में कर (राजस्व) की नियमित आपूर्ति सुनिश्चित कर सकता है, न कि एक हत्यारा और अवैध कब्ज़े वाला। इस पत्राचार से धज्जू सिंह ने नरौनी प्रभाव को एक कूटनीतिक और कानूनी मोर्चे पर स्थापित किया।

महेश साही का विवाह और राज्य पुनः प्राप्ति का प्रयासः भविष्य की नींव

इस बीच, धज्जू सिंह ने महेश साही के भविष्य को सुरक्षित करने के लिए एक और महत्वपूर्ण कदम उठाया। उन्होंने महेश साही का विवाह चैनपुर के शासक परिवार में करा दिया। यह विवाह केवल एक सामाजिक कार्यक्रम नहीं था; यह एक राजनीतिक गठजोड़ था। चैनपुर एक प्रभावशाली जमींदारी थी, और इस रिश्ते से महेश साही को एक शक्तिशाली सहयोगी मिल गया। इससे उसकी वैधता और सामाजिक हैसियत और मजबूत हुई।

दुर्भाग्य से, महेश साही का जीवन अल्पकालिक सिद्ध हुआ। वह कम उम्र में ही चल बसा। यह धज्जू सिंह की सभी योजनाओं और प्रयासों पर एक बड़ा आघात था। ऐसा प्रतीत होता था कि हथुआ की गद्दी पर वैध वंश की वापसी का सपना टूट गया है।

एक न्यायोचित परिणतिः छत्रधारी साही का उदय

परंतु, धज्जू सिंह द्वारा रखी गई नींव और चैनपुर के साथ किया गया गठजोड़ व्यर्थ नहीं गया। महेश साही की मृत्यु के बाद, उनके पुत्र छत्रधारी साही हुए। धज्जू सिंह और चैनपुर

के समर्थन के कारण, छत्रधारी साही की वैधता को मान्यता मिली। अंततः, उन्हें हथुआ की गद्दी प्राप्त हुई। इस प्रकार, धज्जू सिंह की दूरदर्शिता और निरंतर प्रयासों ने एक निर्दोष शिशु की रक्षा करने वाली एक साधारण सी शरण की कहानी को, एक राजवंश की पुनर्स्थापना के महाकाव्य में बदल दिया।

धज्जू सिंह की यह भूमिका नरौनी वंश की चरित्रगत विशेषता को उजागर करती है। यह दर्शाता है कि उनकी पहचान केवल युद्ध और विद्रोह तक सीमित नहीं थी। वे न्याय के पक्षधर, शरणार्थियों के रक्षक और कूटनीतिक चातुर्य से परिपूर्ण थे। उन्होंने दिखाया कि सत्ता केवल तलवार से ही नहीं, बल्कि धैर्य, नैतिकता और राजनीतिक बुद्धिमत्ता से भी सुरक्षित और प्रभावित की जा सकती है। हथुआ की यह घटना नरौनी इतिहास का एक गौरवशाली पृष्ठ है, जो उनके सामाजिक दायित्वबोध और राजनीतिक साहस का प्रमाण है।

स्वतंत्रता संग्राम में योगदान

1942 का भारत छोड़ो आंदोलन: राष्ट्रीय संदर्भ

1942 का वर्ष भारत के स्वतंत्रता संग्राम का एक निर्णायक मोड़ था। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों का समर्थन पाने के लिए भविष्य में स्वशासन का अस्पष्ट वादा किया था। परंतु क्रिप्स मिशन की विफलता के बाद, महात्मा गांधी ने महसूस किया कि अब और प्रतीक्षा व्यर्थ है। उन्होंने 'भारत छोड़ो' (Quit India) का ऐतिहासिक नारा दिया और एक ऐसे जनांदोलन का आह्वान किया जो 'करो या मरो' के संकल्प पर चले। 8 अगस्त 1942 को बंबई के गोवालिया टैंक मैदान में कांग्रेस की ऐतिहासिक बैठक में इस प्रस्ताव को पारित किया गया। अगले ही दिन, गांधी जी सहित सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। इससे पूरे देश में आक्रोश की लहर दौड़ गई। आंदोलन ने एक जनविद्रोह का रूप ले लिया, जिसमें युवाओं, छात्रों और आम जनता ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। बिहार इस आंदोलन का एक प्रमुख केंद्र बना, जहाँ सरकारी

भवनों पर हमले, रेलवे लाइनें उखाड़ने और समानांतर सरकारें स्थापित करने की घटनाएँ हुईं।



शहीद वीर रमण (उमाकांत सिंह): जीवन परिचय

इस राष्ट्रीय ज्वार में, नरौनी वंश का एक युवा चेहरा सामने आया—श्री उमाकांत सिंह, जिन्हें ‘वीर रमण’ के नाम से भी जाना जाता है। उमाकांत सिंह का जन्म नरेन्द्रपुर के एक सम्मानित परिवार में हुआ था। वे प्रखर बुद्धि के युवा थे और अपने भाई शम्भू प्रसाद सिंह के साथ पटना में रहकर अध्ययनरत थे। पटना उस समय बिहार की राजनीतिक और बौद्धिक गतिविधियों का केंद्र था। वहाँ का वातावरण स्वतंत्रता की चाह और ब्रिटिश विरोधी भावनाओं से लबरेज था। उमाकांत सिंह का युवा मन इस वातावरण से गहरे प्रभावित हुआ। वे केवल पढ़ाई तक सीमित नहीं रहना चाहते थे; वे देश की आज़ादी के लिए कुछ

ठोस करना चाहते थे। उनमें देशभक्ति का वह जुनून था, जो सुविधाओं और सुरक्षा को ताक पर रखकर सीधी कार्रवाई की ओर प्रेरित करता है।

11 अगस्त 1942: पटना सचिवालय का ऐतिहासिक दिन

8 अगस्त को भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित होने और नेताओं की गिरफ्तारी के बाद, पूरा देश उबल रहा था। पटना में भी छात्रों और युवाओं ने विरोध प्रदर्शन और सभाएँ आयोजित करना शुरू कर दिया था। इन्हीं में से एक थी पटना सचिवालय (सचिवालय भवन, जो बिहार सरकार का मुख्यालय था) पर तिरंगा झंडा फहराने की योजना। यह एक अत्यंत साहसिक और प्रतीकात्मक कार्य था। सचिवालय ब्रिटिश प्रशासनिक सत्ता का केंद्रीय प्रतीक था। उस पर तिरंगा फहराने का अर्थ था औपनिवेशिक सत्ता को सीधी चुनौती देना और भारत की स्वतंत्र इच्छा का घोषणापत्र जारी करना।

11 अगस्त 1942 का दिन इसी योजना के लिए चुना गया। उमाकांत सिंह और उनके साथी स्वतंत्रता सेनानी इस अभियान में शामिल हुए। उनका उद्देश्य स्पष्ट था: बिना किसी भय के, सचिवालय परिसर में प्रवेश करना और वहाँ तिरंगा फहराकर यह संदेश देना कि भारत अब गुलामी की जंजीरें तोड़ने के लिए दृढ़संकल्पित है।

गोलीबारी में शहादत: विस्तृत विवरण

यह अभियान खतरों से खाली नहीं था। अंग्रेजी सरकार को इस तरह के विरोध की आशंका थी और सचिवालय की सुरक्षा चाकचौबंद थी। विशेष रूप से गोरखा रेजीमेंट के सैनिकों को तैनात किया गया था, जो अपनी अनुशासनबद्धता और बहादुरी के लिए जाने जाते थे। जैसे ही उमाकांत सिंह और उनके साथी सेनानियों का समूह सचिवालय परिसर की ओर बढ़ा या उसके निकट पहुँचा, अंग्रेज अधिकारियों ने उन्हें रोकने का आदेश दिया। स्थिति तनावपूर्ण

हो गई। सेनानी पीछे हटने को तैयार नहीं थे; उनका संकल्प दृढ़ था। इसी दौरान, सुरक्षा बलों ने भीड़ को नियंत्रित करने या भगाने के लिए गोलीबारी शुरू कर दी।

गोलियाँ चलीं। भगदड़ मच गई। लेकिन उमाकांत सिंह भागे नहीं। वे अपने सिद्धांत और अपने मिशन पर डटे रहे। इसी संघर्ष में, एक गोली उन्हें लगी। गंभीर रूप से घायल होने के बावजूद, उनका साहस अडिग रहा। उन्हें तत्काल इलाज के लिए ले जाया गया, लेकिन उनकी छोटे इतनी गंभीर थीं कि वे बच न सके। इस प्रकार, 11 अगस्त 1942 को, उमाकांत सिंह ने देश की आज़ादी के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी। वे पटना में भारत छोड़ो आंदोलन के पहले शहीदों में से एक बने।

स्मारकों की स्थापना और स्मरण परंपरा: अमर बलिदान

उमाकांत सिंह के बलिदान ने उन्हें एक अमर शहीद का दर्जा दिला दिया। उनकी स्मृति को सम्मान देने के लिए दो प्रमुख स्मारक बनाए गए:

1. पटना का शहीद स्मारक: पटना में, जहाँ उन्होंने बलिदान दिया, एक शहीद स्मारक बनाया गया। यह स्मारक न केवल उमाकांत सिंह, बल्कि उस दिन और उस आंदोलन में शहीद हुए अन्य वीरों की स्मृति को समर्पित है। यह आज भी पटना के इतिहास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है और युवाओं के लिए देशभक्ति का प्रेरणास्रोत है।
2. नरेन्द्रपुर में स्मारक: उनके गाँव नरेन्द्रपुर में भी एक विशेष स्मारक बनाया गया है। यह स्मारक स्थानीय लोगों के लिए गर्व और श्रद्धा का केंद्र है। यहाँ हर वर्ष 11 अगस्त को उनकी पुण्यतिथि मनाई जाती है और शहीदों को याद किया जाता है। इस स्मारक के माध्यम से, नरेन्द्रपुर का नाम स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अंकित हो गया है।

उमाकांत सिंह की शहादत नरौनी वंश के इतिहास का सबसे चमकदार और गौरवशाली पन्ना है। यह दर्शाता है कि इस वंश ने केवल स्थानीय या क्षेत्रीय मुद्दों पर ही संघर्ष नहीं

किया, बल्कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता के महान संग्राम में भी अपना योगदान दिया। उनका बलिदान इस सच्चाई का प्रतीक है कि देशभक्ति और साहस की विरासत नरौनी खून में बहती रही है। वे आज भी हमारे बीच एक प्रेरणा के रूप में जीवित हैं, यह याद दिलाते हुए कि स्वतंत्रता मूल्यवान है और उसकी रक्षा के लिए कभी-कभी सर्वोच्च बलिदान भी देना पड़ता है।

शिक्षा एवं संस्कृति के संवाहक

गाँव में शिक्षा का प्रसारः ज्ञान का दीप जलाना

नरौनी परिवारों ने अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को केवल भूमि और सुरक्षा तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने समझा कि एक समुदाय का सही विकास तब तक असंभव है जब तक उसकी नींव ज्ञान और शिक्षा पर न हो। नरेन्द्रपुर और आसपास के गाँवों में, शिक्षा के प्रसार में उनका योगदान उल्लेखनीय रहा।

उस समय औपचारिक स्कूली शिक्षा की सुविधा सीमित थी। ऐसे में, नरौनी परिवारों ने 'पाठशालाओं' या घरों में ही शिक्षण की व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया। संभवतः गाँव के मंदिर के प्रांगण या किसी बुजुर्ग के घर में बच्चे एकत्र होते थे और एक गुरुजी से बुनियादी शिक्षा—पढ़ना, लिखना, अंकगणित और धार्मिक ग्रंथों का ज्ञान—प्राप्त करते थे। इन अनौपचारिक स्कूलों के लिए आर्थिक सहयोग अक्सर स्थानीय जर्मींदार या संपन्न परिवार ही करते थे। नरौनी परिवारों ने इस जिम्मेदारी को निभाया, ताकि गाँव का कोई भी बच्चा अज्ञानता के अंधकार में न रह जाए।

इसके साथ ही, उन्होंने व्यक्तिगत रूप से भी शिक्षा को महत्व दिया। परिवार के अंदर बच्चों को पढ़ने-लिखने के लिए प्रेरित किया जाता था। कई सदस्यों ने संस्कृत, फारसी और बाद

में अंग्रेजी भाषा का ज्ञान भी हासिल किया। यह शिक्षित वर्ग ही आगे चलकर गाँव के प्रशासन, न्याय और बाहरी दुनिया से संवाद में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था।

स्थानीय भाषा एवं संस्कृति का संरक्षणः अपनी जड़ों से जुड़ाव

नरौनी परिवारों ने अपनी राजपूत पहचान और नरवरगढ़ की विरासत को बनाए रखा, लेकिन उन्होंने कभी भी स्थानीय भाषा और संस्कृति से दूरी नहीं बनाई। इसके विपरीत, उन्होंने उसे गले लगाया और संरक्षित करने में योगदान दिया।

वे स्थानीय बोली (भोजपुरी/बज्जिका) बोलते थे और उसे ही अपने दैनिक जीवन और प्रशासन की भाषा बनाया। इससे स्थानीय समाज के साथ उनका तालमेल बना रहा और एक भेद की दीवार नहीं खड़ी हुई। उन्होंने लोक साहित्य, कहावतों और मुहावरों को भी

महत्व दिया। गाँव की चौपालों पर होने वाली बातचीत और किस्सागोई में ये लोक तत्व जीवित रहे।

धार्मिक रीति-रिवाजों में भी एक समन्वय दिखाई देता था। वे अपने राजपूत परंपरागत त्योहार तो मनाते ही थे, लेकिन साथ ही स्थानीय लोक देवताओं और पर्वों को भी पूरा सम्मान देते थे। इसने एक समावेशी सांस्कृतिक माहौल बनाने में मदद की।

सांस्कृतिक आयोजनों की परंपरा: समाज का सूत्र बाँधना

नरौनी परिवारों ने गाँव के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को समृद्ध बनाने के लिए नियमित आयोजनों की परंपरा शुरू की और बनाए रखी।

1. नाटक (रामलीला एवं अन्य): होली, दशहरा और अन्य अवसरों पर गाँव में नाटकों का आयोजन होता था। रामलीला का मंचन विशेष रूप से लोकप्रिय था। इन नाटकों के माध्यम से न केवल धार्मिक कथाओं का प्रसार होता था, बल्कि यह गाँव के लोगों के लिए मनोरंजन और एकत्रित होने का सबसे बड़ा अवसर भी होता था। नरौनी परिवार अक्सर इन आयोजनों के संरक्षक होते थे, जिनका खर्च वही वहन करते थे।

2. संगीत सभाएँ: संगीत को विशेष स्थान प्राप्त था। होली गीतों से लेकर भजन और शास्त्रीय संगीत तक, विभिन्न प्रकार की संगीत सभाएँ आयोजित होती थीं। शिव कुमार सिंह जैसे लोगों ने इन सभाओं को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। ये सभाएँ कलाकारों को प्रोत्साहन देती थीं और गाँव के सौंदर्यबोध को विकसित करती थीं।

3. उत्सव: त्योहारों को बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता था। होली का रंग, दिवाली का दीपक और चैत्र नवरात्र की पूजा—ये सभी सामूहिक उत्सव थे जिनमें पूरा गाँव शामिल

होता था। इन उत्सवों के दौरान सामूहिक भोज (भंडारा) का आयोजन भी किया जाता था, जो सामाजिक समरसता को बढ़ाता था।

धार्मिक सहिष्णुता और समन्वय की मिसाल

यहाँ का सामाजिक ताना-बाना विभिन्न धर्मों और मतों के लोगों से बना था। नरौनी परिवारों ने इस विविधता का सम्मान किया और एक सहिष्णु वातावरण बनाए रखा। वे स्वयं हिंदू धर्म के अनुयायी थे और मंदिरों का निर्माण करवाते थे, लेकिन उन्होंने कभी भी अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णुता नहीं दिखाई।

गाँव में मुस्लिम और अन्य समुदायों के लोग भी रहते थे। उनके त्योहारों और रीति-रिवाजों का भी सम्मान किया जाता था। सामाजिक जीवन में सभी की भागीदारी होती थी। यह समन्वय सिर्फ सहन करने तक सीमित नहीं था, बल्कि सक्रिय सहयोग और आदर पर आधारित था। इससे गाँव में शांति और सौहार्द का वातावरण बना रहता था, जो किसी भी समुदाय के विकास के लिए अनिवार्य है।

सामाजिक समरसता के प्रयास: एक साथ बढ़ने का संकल्प

नरौनी परिवारों ने गाँव को केवल अपने परिवार की जागीर नहीं समझा, बल्कि एक सामूहिक उत्तरदायित्व के रूप में देखा। उन्होंने सामाजिक समरसता बनाए रखने के लिए कई प्रयास किए:

- **न्यायिक पंचायतें:** स्थानीय विवादों का निपटारा पंचायतों द्वारा किया जाता था, जिसमें विभिन्न समुदायों के बुजुर्ग शामिल होते थे। इससे सभी को निष्पक्ष न्याय मिलता था और समाज में विश्वास बना रहता था।

- **सामूहिक कार्य (श्रमदान):** तालाब खुदवाना, कुएँ बनवाना, सड़कें बनाना जैसे सार्वजनिक कार्यों में पूरे गाँव के लोगों को साथ लगाया जाता था। इससे सामूहिकता की

भावना मजबूत होती थी।

- संकट में सहायता: किसी भी परिवार पर मुसीबत आने पर, चाहे वह किसी भी जाति या धर्म का हो, नरौनी परिवार आगे बढ़कर सहायता करते थे। यह सहयोग की भावना गाँव को एक परिवार की तरह बांधे रखती थी।

इस प्रकार, नरौनी वंश ने अपनी सामाजिक भूमिका को एक संरक्षक और संवाहक के रूप में निभाया। उन्होंने शिक्षा और संस्कृति के माध्यम से न केवल अपने, बल्कि पूरे समुदाय के जीवन को समर्द्ध और सार्थक बनाने का प्रयास किया। यही कारण है कि नरेन्द्रपुर सिर्फ एक गाँव नहीं, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक और सामाजिक इकाई के रूप में विकसित हुआ।

III

भाग तीनः व्यक्तित्व एवं विरासत

इस भाग में परिवार के प्रमुख व्यक्तित्व, उनकी विरासत, और पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही प्रेरणादायक कहानियों का संकलन है।

संस्थापकों की श्रृंखला

शक्ति राय से सीताराम सिंह तक: वंश की धुरी

नरेन्द्रपुर की स्थापना करने वाले शक्ति राय के बाद, उनकी विरासत को सँभालने और उसे नई ऊँचाइयों तक ले जाने का दायित्व आया सीताराम सिंह पर। यदि शक्ति राय ने गाँव की नींव रखी, तो सीताराम सिंह ने उस पर एक भव्य और स्थायी भवन खड़ा किया। वे शक्ति राय के वंशज थे और उन्होंने न केवल गाँव का प्रशासन संभाला, बल्कि उसकी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पहचान को मजबूत करने का कार्य किया। उनके अधीन नरेन्द्रपुर ने एक सुनियोजित बस्ती से आगे बढ़कर एक समृद्ध और आत्मनिर्भर गाँव का रूप लिया। उन्होंने शिव मंदिर, अन्य मंदिरों और पोखरों का निर्माण करवाया, जो गाँव के सामाजिक जीवन के केंद्र बिंदु बने। इन निर्माणों ने न केवल धार्मिक आस्था को मजबूत किया, बल्कि सामुदायिक जीवन के लिए स्थान भी प्रदान किया। सीताराम सिंह द्वारा की गई योजनाएँ और कार्य आने वाली पीढ़ियों के लिए एक मानक स्थापित कर गए।

शिव कुमार सिंह संगीत के उपासक थे, जिनकी संगीत सभाएं गाँव के सांस्कृतिक जीवन का हिस्सा बनीं।

कृष्ण कुमार सिंह - ये नरेन्द्रपुर के अत्यंत प्रतिष्ठित आयुर्वेद के ज्ञाता ये। इन्हें भ्रमण और तीर्थयात्रा का विशेष शौक था और इन्होंने बद्रीनाथ धाम की यात्रा की थी।

सूबा सिंह ये नरेन्द्रपुर गाँव के उन व्यक्तियों में से थे जिन्हें गाँव की प्रत्येक जमीन का संपूर्ण ज्ञान था। अमीन के कार्य में इनकी दक्षता ने गाँव प्रशासन और भूमि व्यवस्था को सुदृढ़

किया।

राजनंदन सिंह 'बबुआ काका' के नाम से लोकप्रिय, सहयोगी स्वभाव और कृषि-प्रेम के लिए याद किए जाते हैं।

पारसनाय सिंह स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे, जिन्होंने 1942 आंदोलन में सक्रिय भागीदारी निभाई और ग्रामीण चेतना जगाई।

राजनारायण सिंह नरेन्द्रपुर गांव के प्रथम पोस्टमास्टर रहे। डाक व्यवस्था के माध्यम से गाँव को बाहरी दुनिया से जोड़ने में इनका योगदान महत्वपूर्ण था।

जगदेव सिंह अपने दृढ़ व्यक्तित्व, स्पष्ट वैचारिक दृष्टि और सशक्त नेतृत्व क्षमता के लिए जाने जाते थे। ग्रामीण राजनीति में उनकी सक्रिय भूमिका और निर्णयों की स्पष्टता ने स्थानीय सामाजिक संतुलन को दिशा दी। वे केवल तत्कालीन परिस्थितियों पर प्रतिक्रिया करने वाले व्यक्ति नहीं थे, बल्कि दूरगामी प्रभावों को समझकर निर्णय लेने वाले नेतृत्वकर्ता थे। गाँव के सामूहिक हितों से जुड़े मामलों में उनकी राय को विशेष महत्व दिया जाता था,

और उनकी उपस्थिति ग्रामीण राजनीति में स्थिरता एवं अनुशासन का प्रतीक मानी जाती थी।

बच्चू सिंह ये अपने तेज स्वभाव और गहरी राजनीतिक समझ के लिए जाने जाते थे। ग्रामीण राजनीति में इनकी पकड़ और निर्णय क्षमता ने गाँव के सामूहिक जीवन को प्रभावित किया।

शंभू प्रसाद सिंह उच्च न्यायपालिका से जुड़े विद्वान थे, जिनकी ऐतिहासिक कृतियाँ वंश की धरोहर बन गईं।

दशरथ सिंह स्वभाव से गंभीर, किंतु आआंतरिक राजनीति और दांव-पेंच के कुशल खिलाड़ी थे। गाँव की रणनीतिक गतिविधियों में इनकी भूमिका विशेष मानी जाती है।

विश्वनाथ सिंह सरल और सहज स्वभाव के व्यक्ति थे। इनके व्यक्तित्व में अपनापन और मिलनसारिता स्पष्ट झालकरी थी।

रुद्रप्रताप सिंह नरेन्द्रपुर पंचायत के वर्षों तक निर्विरोध मुखिया रहे, जिन्होंने सेवा और समरसता की मिसाल पेश की।

उमाकांत प्रसाद सिंह भारत छोड़ो आंदोलन में शहीद हुए, उनका बलिदान आज भी गाँव की आत्मा में बसता है।

सूर्य सिंह हसमुख और मजाकिया स्वभाव के साथ-साथ गुस्सैल प्रकृति के भी थे। गाँव के सामाजिक जीवन में इनकी उपस्थिति हमेशा प्रभावी रही।

समुंद्र सिंह ये सौम्य, विनम्र और उत्सवधर्मी थे। इन्होंने सामाजिक आयोजन और सौहार्द

को बढ़ावा दिया। होली गीत गाने में अत्यंत निपुण थे।

मुत्री सिंह पटना उच्च न्यायालय में कार्यरत रहे और सीधे-साधे सरल स्वभाव के कारण सम्मानित एवं विश्वसनीय व्यक्ति के रूप में विख्यात रहे।

रामाधार सिंह अग्रेजी में निपुण, रंगमच प्रेमी और गांधीवादी जीवनशैली अपनाने वाले सम्मानित ग्रामीण थे।

डॉ फणीश सिंह साहित्य, इतिहास और शिक्षा के समर्पित साधक थे, जिन्होंने गाँव के सांस्कृतिक उत्थान में अग्रणी भूमिका निभाई।

श्यामधाता सिंह ठेकेदारी के पेशे से जुड़े होने के बावजूद सांस्कृतिक गतिविधियों में गहरी रुचि रखते थे। विशेषकर नाटक और सांस्कृतिक आयोजनों में सक्रिय भागीदारी की वजह से उनकी लोकप्रिय पहचान बनी।

ध्रुप सिंह ये उत्साही, ऊर्जावान और सामाजिक समरसता को बढ़ाने वाले व्यक्ति थे। खेल और नाटक दोनों में सक्रिय रहे। अत्यंत मिलनसार स्वभाव के थे और एक साथ तीन पीढ़ियों के साथ मित्रता रखते थे।

चंद्रशेखर सिंह ग्रामीण डॉक्टर के रूप में इन्होंने गाँव के स्वास्थ्य जीवन को समर्पित सेवा दी। इनके सहज और मिलनसार स्वभाव ने इन्हें सभी का प्रिय बना दिया।

सूर्यशेखर सिंह ये सरल एवं सहज स्वभाव वाले व्यक्ति थे और गाँव में अपने विनोदी और मिलनसार व्यक्तित्व के कारण लोकप्रिय रहे।

राघवेन्द्र सिंह सेवा और संवाद की भावना से जुड़े, पारस बाबू के अनुयायी के रूप में गाँव में

पहचान बनाई।

कमलेन्द्र कुमार सिंह शिक्षाविद और इतिहास-प्रेमी, जिन्होंने गाँव की स्मृति और शिक्षा को सहेजने में योगदान दिया।

माधवेन्द्र कुमार सिंह: ये व्यवसाय में निपुण थे और गाँव में सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ावा देने वाले; अति सौम्य एवं आत्मीय स्वभाव के व्यक्ति थे।

चन्द्रकीर्ति सिंह शहीद पुत्र, सृजनशील और गांधीवादी सोच से प्रेरित - सांस्कृतिक आयोजनों में हमेशा अग्रणी रहे।

मणीश प्रसाद सिंह अधिवक्ता और समाजसेवी हैं. जिन्होंने शिक्षा और सामाजिक चेतना के लिए निरंतर कार्य किया।

कैप्टन हरीकीर्ति सिंह सेवानिवृत्त आर्मी कैष्टन, गाँव से गहरे जुड़े रहे और मिलनसार स्वभाव के कारण सभी के प्रिय थे।

शिवकीर्ति सिंह सुप्रीम कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश है, जिनकी न्यायिक यात्रा, वंश और क्षेत्र दोनों के लिए प्रेरणा बनी है।

इन सभी गौरवशाली नामों से यह स्पष्ट होता है कि विरासत केवल स्मृति नहीं, बल्कि उत्तरदायित्व की वह मशाल भी है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी सौंपी जाती है- अपने समय से आगे बढ़कर आने वाले कल को रोशन करने के लिए

असांव में विरासत का पुनर्जीवन

कुल देवी मंदिर का पुनर्निर्माण: आस्था की पुनर्प्रतिष्ठा

असांव गाँव नरौनी वंश के इतिहास में एक महत्वपूर्ण गढ़ रहा है, जहाँ बाबू वीरा राय और दीरगा राय जैसे वीरों ने अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध संघर्ष किया था। समय के प्रवाह में, इस ऐतिहासिक गाँव की कुछ प्रतीकात्मक संरचनाएँ जीर्ण-शीर्ण हो गई थीं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण था कुल देवी का मंदिर। यह मंदिर न केवं आस्था का केंद्र था, बल्कि नरौनी परिवार की सामूहिक पहचान और उनके सांस्कृतिक अस्तित्व का प्रतीक भी था। इसकी दशा देखकर, वंश के वर्तमान पीढ़ी के लोगों ने इसे पुनर्जीवित करने का संकल्प लिया।

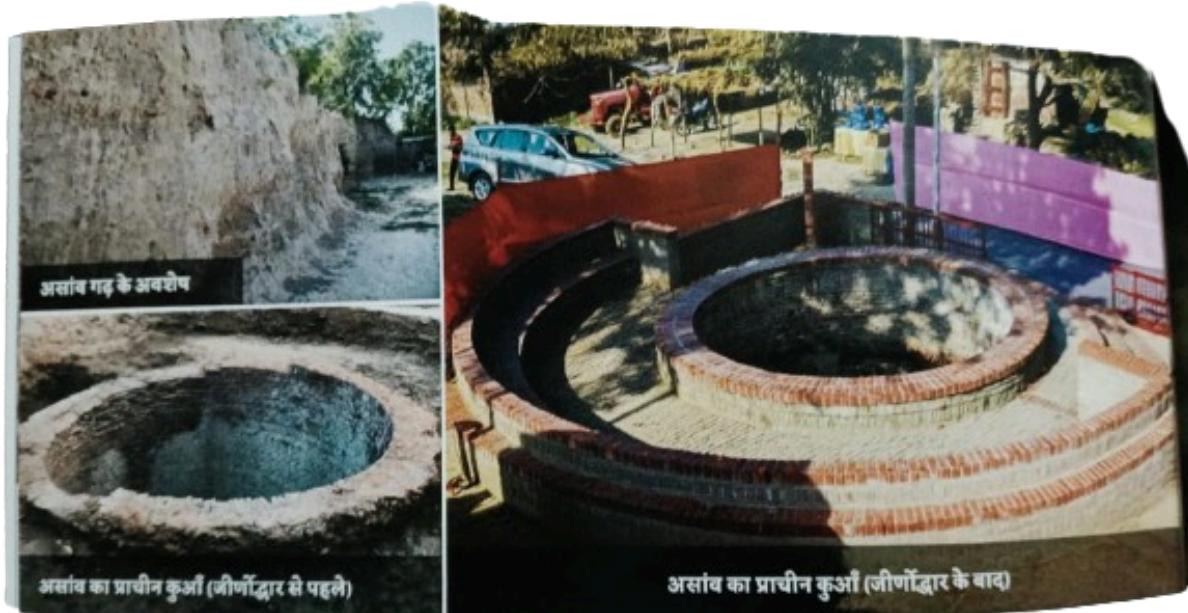
पुनर्निर्माण का कार्य केवल इमारत खड़ा करना नहीं था; यह एक सांस्कृतिक पुनरुत्थान था। परिवार के सदस्यों ने एकजुट होकर धन, श्रम और विचार का योगदान दिया। पुराने मंदिर की वास्तुकला और पवित्रता को बनाए रखते हुए, उसे नए स्वरूप में ढाला गया। इस प्रक्रिया में गाँव के बुजुर्गों की सलाह ली गई, जिन्हें पुराने स्वरूप की स्मृति थी। नए मंदिर का उद्घाटन एक भव्य समारोह में किया गया, जिसमें गाँव के सभी लोगों ने भाग लिया। इससे न केवं एक धार्मिक स्थल का पुनर्निर्माण हुआ, बल्कि वंश की सामूहिक चेतना और एकजुटता को भी नई ऊर्जा मिली। कुल देवी मंदिर फिर से गाँव के सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन का केंद्र बन गया है।

प्राचीन कुएँ का जीर्णोद्धार: जल, जीवन और विरासत का संगम

असांव की दूसरी महत्वपूर्ण विरासत थी एक प्राचीन कुआँ। ऐसा माना जाता है कि इस कुएँ का निर्माण नरौनी वंश के पूर्वजों ने ही असांव में बसने के समय करवाया था। यह कुआँ सदियों से गाँव के लोगों की प्यास बुझाता रहा था और सामुदायिक जीवन का एक जीवंत हिस्सा था। लेकिन आधुनिक जलापूर्ति व्यवस्था के आगमन और उपेक्षा के कारण, यह कुआँ लगभग बंद और उपयोग से बाहर हो गया था।

इस कुएँ का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व समझते हुए, परिवार के लोगों ने इसके जीर्णोद्धार का निर्णय लिया। इस कार्य में केवल सफाई और मरम्मत ही नहीं हुई, बल्कि इसके आसपास के क्षेत्र को भी सुंदर बनाया गया। कुएँ के चारों ओर चबूतरा बनाया गया, जहाँ लोग बैठ सकें। इसके जल को फिर से स्वच्छ और उपयोग योग्य बनाया गया। इस जीर्णोद्धार का प्रतीकात्मक महत्व बहुत गहरा है। यह कुआँ न केवं जल का स्रोत है, बल्कि उस संकल्प का प्रतीक है जिसके साथ पूर्वजों ने इस भूमि पर अपना जीवन शुरू किया था।

इसे बचाने का अर्थ है, अपनी जड़ों से जुड़े रहना और उन संसाधनों का सम्मान करना जिन पर हमारा अस्तित्व टिका है।



सांस्कृतिक निरंतरता के प्रयास: अतीत को वर्तमान में बसाना

कुल देवी मंदिर और प्राचीन कुएँ के पुनर्निर्माण केवल दो अलग-अलग परियोजनाएँ नहीं थीं; वे एक बड़े उद्देश्य के हिस्से थे—सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखना। नरौनी वंश ने समझा कि भवनों का जीर्णोद्धार महत्वपूर्ण है, लेकिन उससे भी अधिक जरूरी है उन भवनों में फिर से जीवन का संचार करना और उनसे जुड़ी परंपराओं को पुनर्जीवित करना।

इसलिए, मंदिर में नियमित पूजा-अर्चना और त्योहारों का आयोजन फिर से शुरू किया गया। कुएँ के आसपास सामुदायिक सभाएँ और सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए जाने

लगे। इन प्रयासों का उद्देश्य था कि नई पीढ़ी इन ऐतिहासिक स्थलों से जुड़े और उनके महत्व को समझे। बच्चों और युवाओं को इनके इतिहास के बारे में बताया गया। इससे उनमें अपनी विरासत के प्रति गर्व और जिम्मेदारी की भावना पैदा हुई।

इन प्रयासों ने गाँव में एक नया सामाजिक सद्भाव भी पैदा किया। मंदिर और कुएँ का जीर्णोद्धार एक सामूहिक प्रयास था, जिसमें गाँव के विभिन्न समुदायों के लोगों ने भी हिस्सा लिया। इससे न केवल नरौनी परिवार, बल्कि पूरे गाँव की सामूहिक पहचान मजबूत हुई। यह प्रक्रिया दर्शाती है कि विरासत का संरक्षण केवल अतीत को संग्रहालय में रखना नहीं है, बल्कि उसे वर्तमान जीवन का सक्रिय हिस्सा बनाना है।

युवा पीढ़ी में ऐतिहासिक चेतना का विकास: विरासत के नए वाहक

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इन सभी प्रयासों ने युवा पीढ़ी में ऐतिहासिक चेतना के विकास में मदद की है। जब युवा अपनी भूमि पर खड़े प्राचीन कुएँ को देखते हैं, जिसे उनके पूर्वजों ने बनवाया था, या कुल देवी के मंदिर में पूजा करते हैं, तो वे केवल एक इमारत या रीति-रिवाज नहीं देखते—वे अपनी पहचान की एक जीवंत कड़ी देखते हैं।

इस चेतना को और विकसित करने के लिए, परिवार के बुजुओं ने युवाओं को कहानियाँ सुनाना शुरू किया—वीरा राय और दीरगा राय की वीरता की कहानियाँ, धज्जू सिंह की कूटनीति की कहानियाँ, और उमाकांत सिंह के बलिदान की कहानी। इन कहानियों ने युवाओं के मन में गर्व और कर्तव्यबोध जगाया। कई युवाओं ने स्वेच्छा से इन ऐतिहासिक स्थलों की देखभाल और रखरखाव की जिम्मेदारी ली है। वे डिजिटल माध्यमों से इनकी जानकारी को और व्यापक बना रहे हैं। इस प्रकार, विरासत का दायित्व अब पुरानी पीढ़ी से नई पीढ़ी के कंधों पर सुरक्षित रूप से स्थानांतरित हो रहा है।

असांव में विरासत के इस पुनर्जीवन से यह स्पष्ट संदेश मिलता है कि नरौनी वंश केवल अपने गौरवशाली अतीत पर गर्व करने तक सीमित नहीं है। वह सक्रिय रूप से उस अतीत

को सहेज रहा है, उसे पुनर्जीवित कर रहा है और उसे भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक जीवंत उपहार के रूप में सौंप रहा है। यह एक चलती-फिरती, साँस लेती विरासत है, जो समय के साथ नए रंग-रूप धारण करती है, लेकिन अपने मूल सार को कभी नहीं भूलती।

IV

भाग चारः वर्तमान और भविष्य

इस भाग में परिवार के वर्तमान स्वरूप, नई पीढ़ी की सोच, और भविष्य की संभावनाओं व चुनौतियों पर प्रकाश डाला गया है।

पारिवारिक वंशावली एवं दस्तावेज़

प्रमुख शाखाओं का वंश वृक्षः जड़ों का नक्शा

किसी भी वंश की सबसे मूल्यवान धरोहर उसकी वंशावली होती है। यह एक जीवित नक्शा है जो बताता है कि हम कहाँ से आए हैं, हमारे पूर्वज कौन थे, और समय के साथ हम कैसे फैले और विकसित हुए। नरौनी वंश की वंशावली को समझना एक जटिल किंतु रोमांचक कार्य है, क्योंकि यह नरवरगढ़ से निकली एक धारा का पूर्वांचल के विस्तृत मैदान में फैलकर अनेक धाराओं में बंट जाने की कहानी है।

वंशावली की शुरुआत नरवरगढ़ के परिहार वंश से होती है, विशेष रूप से दिघदेव और लबदेव से। इसके बाद की प्रमुख शाखाएँ उनके वंशजों द्वारा स्थापित की गई बसाहटों के आधार पर बनती हैं। वंशीधर राय और उनके नौ पुत्र इस वंश वृक्ष की मजबूत शाखाएँ हैं। प्रत्येक पुत्र ने एक नए गाँव की स्थापना की और उसके आसपास अपनी शाखा का विस्तार किया। इस प्रकार, नरेन्द्रपुर, भरथुई, छितनपुर, लोहगजर, सेलरापुर, सरहरवा, विष्णुपुर, जामापुर और अन्य गाँव अलग-अलग शाखाओं के केंद्र बने।

इस वंश वृक्ष को बनाने और बनाए रखने के लिए पारंपरिक रूप से 'पंजी' या 'बही-खाते' का उपयोग किया जाता था। इनमें जन्म, विवाह और मृत्यु का विवरण दर्ज किया जाता था। आज, इन पारंपरिक रिकॉर्डों और बुजुर्गों की स्मृति के आधार पर एक आधुनिक वंशावली चार्ट तैयार करने का प्रयास किया जा रहा है। यह चार्ट न केवल नामों और शाखाओं को

दर्शाता है, बल्कि उन महत्वपूर्ण घटनाओं और व्यक्तित्वों को भी चिह्नित करता है जिन्होंने इस वंश के इतिहास को आकार दिया।

ऐतिहासिक दस्तावेजों का संग्रह: समय के साक्ष्य

इतिहास केवल कहानियों पर नहीं, बल्कि ठोस साक्ष्यों पर टिका होता है। नरौनी वंश के इतिहास को प्रमाणित करने वाले अनेक दस्तावेज समय की धूल में छिपे हुए हैं या परिवारों के पुराने संदूकों में सहेजे हुए हैं। इन दस्तावेजों का संग्रह और संरक्षण एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है।

इन दस्तावेजों में शामिल हो सकते हैं:

1. जमीन से संबंधित दस्तावेज़: पट्टे (लिखापट्टी), बंदोबस्त के कागजात, खतियान और भूमि सौदों के दस्तावेज। ये दस्तावेज बताते हैं कि परिवार कब और कहाँ बसे, उनकी भूमि की सीमाएँ क्या थीं, और समय के साथ उनकी आर्थिक स्थिति कैसे रही।
2. शासकीय पत्राचार: ब्रिटिश काल के दौरान जारी किए गए आदेश, कर सम्बन्धी नोटिस, या स्थानीय प्रशासन के साथ हुए पत्र-व्यवहार के अंश। उदाहरण के लिए, धज्जू सिंह द्वारा हथुआ राज्य के मामले में ब्रिटिश अधिकारियों को लिखे गए पत्रों के प्रतिलिपि।
3. न्यायिक दस्तावेज़: मुकदमों के कागजात, जिनमें दीरगा राय के मुकदमे या अन्य स्थानीय विवादों के बारे में जानकारी हो सकती है।
4. पारिवारिक पत्र: पुराने पत्र जो परिवार के सदस्यों के बीच लिखे गए हों, जिनमें उस समय की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण हो।
5. धार्मिक एवं सामाजिक रिकॉर्डः मंदिरों के दान-पत्र, सामूहिक भोज के लेखे-जोखे, या सामुदायिक निर्णयों के रिकॉर्ड।

इन दस्तावेजों को एकत्र करने के लिए परिवार के विभिन्न घरों की खोजबीन करनी पड़ती है। कई बार ये दस्तावेज नाजुक अवस्था में होते हैं और उन्हें संरक्षित करने के लिए विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। डिजिटलाइजेशन इसका एक महत्वपूर्ण समाधान है।

पुराने चित्रों एवं साक्षों का संकलन: एक तस्वीर हज़ार शब्द

लिखित दस्तावेजों के साथ-साथ, दृश्य साक्ष्य भी इतिहास को जीवंत बनाने में मदद करते हैं। नरौनी परिवारों के पुराने चित्र, तस्वीरें और अन्य वस्तुएँ इस दृष्टि से अमूल्य हैं।

1. पारिवारिक फोटोग्राफः सौ साल पुरानी या उससे भी पुरानी तस्वीरें, जिनमें परिवार के सदस्य पारंपरिक पोशाक में दिखाई देते हैं। ये तस्वीरें न केवं चेहरों को दर्शाती हैं, बल्कि उस समय की वेशभूषा, आभूषण और जीवनशैली के बारे में भी बताती हैं।
2. वस्तुएँ एवं स्मृति चिन्हः पुराने हथियार, आभूषण, बर्तन, पोशाक, या कोई अन्य वस्तु जो पीढ़ियों से सहेजकर रखी गई हो। ये वस्तुएँ हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की मूक गवाह हैं।
3. स्थानों के चित्रः असांव की गढ़ी, नरेन्द्रपुर के पुराने मंदिर, या कुएँ की पुरानी तस्वीरें। इनसे पता चलता है कि ये स्थान पहले कैसे दिखते थे और समय के साथ उनमें क्या परिवर्तन आया है।

इन चित्रों और वस्तुओं को एकत्र करके एक ‘पारिवारिक अभिलेखागार’ या ‘स्मृति संग्रहालय’ बनाने का विचार है। इससे नई पीढ़ी इन वस्तुओं को सीधे देख और छू सकती है, जिससे उनका इतिहास के साथ भावनात्मक जुड़ाव और मजबूत होगा।

मौखिक इतिहास का लिखित रूप में संरक्षण: स्मृतियों को अमर बनाना

नरौनी वंश के इतिहास का एक बहुत बड़ा हिस्सा मौखिक परंपरा में संरक्षित है। ये कहानियाँ दादा-दादी, नाना-नानी ने सुनाई हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही हैं। लेकिन आधुनिक समय में, यह मौखिक श्रृंखला टूटने का खतरा है। इसलिए, इन मौखिक इतिहासों को लिखित रूप में सुरक्षित करना अत्यंत आवश्यक हो गया है।

इस कार्य के लिए, परिवार के बुजुर्ग सदस्यों के साथ व्यवस्थित साक्षात्कार आयोजित किए जा रहे हैं। उनसे पूछा जाता है कि उन्होंने अपने बुजुर्गों से क्या-क्या सुना है। ये साक्षात्कार ऑडियो या वीडियो रिकॉर्ड किए जाते हैं और फिर उन्हें लिपिबद्ध किया जाता है। इन साक्षात्कारों से मिली जानकारी में शामिल हो सकते हैं:

- पूर्वजों के आने और बसने की कहानियाँ।
- दीरगा राय, वीरा राय, धज्जू सिंह आदि के संघर्ष और कार्यों का विवरण।
- पुराने त्योहारों, रीति-रिवाजों और सामाजिक व्यवस्था का वर्णन।
- गाँव में हुई महत्वपूर्ण घटनाओं का ब्यौरा।

इस लिखित संकलन से न केवं इतिहास के तथ्य सुरक्षित होंगे, बल्कि उस समय के भाव, भाषा और संदर्भ भी संरक्षित होंगे। यह एक जीवित दस्तावेज होगा जो आने वाली पीढ़ियों को सीधे अपने पूर्वजों की आवाज़ सुनने और उनके अनुभवों को समझने का अवसर देगा।

इस प्रकार, वंशावली, दस्तावेज, चित्र और मौखिक इतिहास का यह संग्रह मिलकर नरौनी वंश की एक समग्र और प्रामाणिक तस्वीर प्रस्तुत करता है। यह कार्य केवल अतीत को

संजोने के लिए नहीं है; यह भविष्य के लिए एक मजबूत आधार तैयार करने के लिए है, ताकि हर नया सदस्य जान सके कि उसकी जड़ें कितनी गहरी और समृद्ध हैं, और उस पर कितनी बड़ी विरासत का दायित्व है।

सामाजिक योगदान का आकलन

क्षेत्रीय विकास में भूमिका: नींव के पत्थर

किसी भी समुदाय की महानता का आकलन केवल उसकी सैन्य शक्ति या आर्थिक संपन्नता से नहीं, बल्कि उसके द्वारा समाज और क्षेत्र के समग्र विकास में दिए गए योगदान से होता है। नरौनी वंश ने नरवरगढ़ से लेकर पूर्वाचल तक अपनी यात्रा में, केवल अपने परिवार का ही नहीं, बल्कि पूरे क्षेत्र के विकास में एक नींव की भूमिका निभाई है। उनकी सबसे बड़ी देन है—स्थायी बसाहटों की स्थापना। देवढ़ी, बांसडीह, सुखपुरा, राजा गाँव खरौनी और नरेन्द्रपुर जैसे गाँवों की नींव रखकर उन्होंने एक खाली या उपेक्षित भूभाग को सुव्यवस्थित, कृषि-योग्य और सुरक्षित मानव बस्तियों में बदल दिया। इन गाँवों ने न केवल अपने निवासियों को आश्रय दिया, बल्कि आसपास के व्यापार, संस्कृति और प्रशासन के लिए भी केंद्र बिंदु बने। इन बसाहटों ने क्षेत्र के सामाजिक और आर्थिक ताने-बाने को मजबूत किया और स्थानीय विकास की नींव रखी।

शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्र में योगदान: मानव पूँजी का निर्माण

शिक्षा और स्वास्थ्य किसी भी समाज की मूलभूत जरूरतें हैं। नरौनी परिवारों ने इन दोनों क्षेत्रों में अपने सीमित संसाधनों के भीतर रहकर महत्वपूर्ण योगदान दिया।

शिक्षा: औपचारिक स्कूलों के अभाव में, उन्होंने पारंपरिक ‘पाठशालाओं’ और घरेलू शिक्षण को प्रोत्साहन दिया। बुजुर्गों और विद्वानों द्वारा बच्चों को पढ़ाने-लिखाने की व्यवस्था को संरक्षण मिला। डॉ. फणीश सिंह जैसे लोगों ने साहित्य और इतिहास के ज्ञान

को बढ़ावा देकर एक बौद्धिक वातावरण बनाया। इसने न केवल साक्षरता को बढ़ावा दिया, बल्कि सामाजिक चेतना और नैतिक मूल्यों के विकास में भी मदद की। शिक्षा के प्रति यह रुचि ही आगे चलकर न्यायमूर्ति शिवकीर्ति सिंह जैसे उच्च शिक्षित और प्रतिष्ठित व्यक्तित्वों के उदय का कारण बनी।

स्वास्थ्य: आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं से दूर ग्रामीण क्षेत्रों में, कृष्ण कुमार सिंह जैसे आयुर्वेदाचार्य और चंद्रशेखर सिंह जैसे ग्रामीण डॉक्टर वरदान के समान थे। उन्होंने निःस्वार्थ भाव से लोगों का इलाज किया और स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता फैलाई। यह सेवा केवल उपचार तक सीमित नहीं थी; यह मानवीय करुणा और सामुदायिक भावना का प्रतीक थी। इससे गाँव के लोगों के जीवन स्तर में सुधार आया और एक स्वस्थ समाज के निर्माण में मदद मिली।

कृषि और जल प्रबंधन में नवाचार: धरती और जल का सदुपयोग

नरौनी परिवारों की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि थी। उन्होंने केवल पारंपरिक खेती ही नहीं की, बल्कि कृषि और जल प्रबंधन में नवाचार भी किए।

कृषि: उपजाऊ भूमि का चयन करते हुए, उन्होंने विविध प्रकार की फसलें उगाईं। संभवतः उन्होंने नई कृषि तकनीकों और बीजों को भी अपनाया होगा। सूबा सिंह जैसे भूमि विशेषज्ञों ने ज़मीन के सही बैटवारे और उपयोग को सुनिश्चित किया, जिससे कृषि उत्पादन अधिकतम हुआ। इसने न केवल परिवारों की आजीविका सुरक्षित की, बल्कि पूरे क्षेत्र में खाद्य सुरक्षा में भी योगदान दिया।

जल प्रबंधन: सूखे के खतरे से निपटने और सिंचाई की निरंतर आपूर्ति के लिए जल प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण था। नरौनी परिवारों ने तालाबों (पोखरों) और कुओं के निर्माण पर विशेष ध्यान दिया। असांव और नरेन्द्रपुर में बनाए गए तालाब वर्षा के जल को संग्रहित करते थे, जिसका उपयोग खेतों की सिंचाई और पशुओं के लिए किया जाता था। कुओं से पीने के

पानी की आपूर्ति होती थी। यह जल संचयन की एक स्थायी और समझदारी भरी प्रणाली थी, जो आज भी प्रासंगिक है। इससे न केवल कृषि को लाभ हुआ, बल्कि गाँव को जल संकट से भी मुक्ति मिली।

सामाजिक समरसता के प्रयासों का मूल्यांकनः एकजुट समाज का सपना

नरौनी वंश की सबसे बड़ी सामाजिक उपलब्धि शायद यही रही है कि उन्होंने एक सामंजस्यपूर्ण और समरस समाज बनाने का प्रयास किया। एक राजपूत वंश होने के बावजूद, उन्होंने कभी भी स्वयं को स्थानीय समाज से अलग-थलग नहीं किया।

समावेशिता: उन्होंने स्थानीय भाषा, रीति-रिवाज और त्योहारों को अपनाया। इससे एक सहज सामाजिक एकीकरण हुआ। गाँव में विभिन्न जातियों और समुदायों के लोग एक साथ रहते थे और सामूहिक कार्यों में भाग लेते थे।

न्यायिक व्यवस्था: स्थानीय पंचायतों के माध्यम से निष्पक्ष न्याय की व्यवस्था ने सभी वर्गों के लोगों में विश्वास पैदा किया। इससे सामाजिक तनाव कम हुआ और सौहार्द बना रहा।

संकट में सहायता: गाँव के किसी भी परिवार पर संकट आने पर, नरौनी परिवार आगे बढ़कर सहायता करते थे। यह सहयोग की भावना गाँव को एक बड़े परिवार की तरह बाँधे रखती थी।

धार्मिक सहिष्णुता: विभिन्न धर्मों के प्रति सम्मान ने एक शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का वातावरण बनाया।

इन प्रयासों के परिणामस्वरूप, नरेन्द्रपुर और आसपास के गाँवों में एक ऐसा समाज विकसित हुआ जहाँ विविधता के बीच एकता और पारस्परिक सम्मान का भाव था। यह

सामाजिक समरसता ही इस क्षेत्र की सबसे बड़ी ताकत बनी और आज भी इसकी पहचान है।

इस प्रकार, नरौनी वंश का सामाजिक योगदान बहुआयामी और गहरा रहा है। उन्होंने न केवल भौतिक बुनियादी ढाँचे का निर्माण किया, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि और सामाजिक एकता की नींव भी रखी। उनका यह योगदान केवल अतीत की गाथा नहीं है; यह एक ऐसी विरासत है जो आज भी इस क्षेत्र के चरित्र और विकास को प्रभावित कर रही है। इसका मूल्यांकन करने से हमें यह समझने में मदद मिलती है कि एक परिवार या समुदाय कैसे अपने सीमित दायरे से निकलकर पूरे क्षेत्र के भाग्य को आकार दे सकता है।

विरासत का भविष्य - चुनौतियाँ और संभावनाएँ

बदलते समय में पहचान का संरक्षण: नाजुक सन्तुलन

आज का युग वैश्वीकरण और तीव्र परिवर्तन का युग है। शहरीकरण, पलायन, और डिजिटल संस्कृति ने पारंपरिक ग्रामीण जीवन और सामाजिक ढाँचों को गहराई से प्रभावित किया है। इस बदलते परिवेश में, नरौनी वंश जैसी ऐतिहासिक पहचानों का संरक्षण एक बड़ी चुनौती बन गया है। पहचान का अर्थ केवल एक उपनाम या गोत्र नहीं है; यह उन मूल्यों, परंपराओं, कहानियों और सामूहिक स्मृतियों का समुच्चय है जो सदियों से इस वंश को परिभाषित करते आए हैं। मुख्य चुनौतियाँ हैं:

- **पीढ़ीगत अंतराल:** नई पीढ़ी के साथ पुरानी पीढ़ी का संवाद कमजोर हो रहा है। बुजुर्गों के पास संचित ज्ञान और कहानियाँ हैं, जबकि युवा नई दुनिया की आकांक्षाओं और चुनौतियों में व्यस्त हैं। इस अंतराल के कारण, विरासत का हस्तांतरण बाधित हो रहा है।
- **भौगोलिक बिखराव:** शिक्षा और रोजगार के लिए युवा गाँवों से शहरों और दूसरे राज्यों में जा रहे हैं। इससे सामुदायिक एकता और सामूहिक स्मृति कमजोर होती है। जो लोग दूर रहते हैं, उनके लिए अपनी जड़ों से जुड़े रहना कठिन हो जाता है।
- **सांस्कृतिक विस्मृति:** आधुनिक मनोरंजन और जीवनशैली के कारण, पारंपरिक त्योहार, लोकगीत, कथावाचन और सामुदायिक आयोजनों का महत्व घट रहा है। इससे सांस्कृतिक पहचान धूमिल होने का खतरा है।

इन चुनौतियों के बावजूद, पहचान के संरक्षण की संभावनाएँ भी उतनी ही मजबूत हैं। आधुनिकता और परंपरा के बीच एक नाजुक संतुलन बनाकर ही इस विरासत को जीवित

रखा जा सकता है। इसके लिए जरूरी है कि युवा पीढ़ी को यह समझाया जाए कि उनकी पहचान उनकी ताकत है, उनकी प्रगति में बाधक नहीं। एक डॉक्टर, इंजीनियर या वकील भी अपनी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक जड़ों पर गर्व कर सकता है और उन्हें सहेज सकता है।

युवा पीढ़ी की भूमिका और जिम्मेदारी: नए संवाहक

विरासत के भविष्य की कुंजी युवा पीढ़ी के हाथों में है। वे ही हैं जो इस जिम्मेदारी को आगे ले जा सकते हैं। उनकी भूमिका निष्क्रिय उत्तराधिकारी की नहीं, बल्कि सक्रिय संवाहक की होनी चाहिए।

भूमिकाएँ:

1. सीखने वाले: युवाओं को अपने बुजुर्गों से जानबूझकर संवाद स्थापित करना चाहिए। उनसे कहानियाँ सुननी चाहिए, पारिवारिक इतिहास के बारे में पूछना चाहिए और परंपराओं को समझना चाहिए।
2. दस्तावेजकार: वे डिजिटल टूल्स का उपयोग करके मौखिक इतिहास को रिकॉर्ड कर सकते हैं, पुराने दस्तावेजों और फोटोग्राफ्स को स्कैन करके डिजिटल आर्काइव बना सकते हैं।
3. प्रसारक: सोशल मीडिया, ब्लॉग्स या यूट्यूब चैनल्स के माध्यम से वे नरौनी इतिहास और संस्कृति की कहानियों को एक विस्तृत दर्शक वर्ग तक पहुँचा सकते हैं। इससे न केवल परिवार के सदस्य, बल्कि बाहरी लोग भी इस विरासत से परिचित होंगे।
4. नवप्रवर्तक: युवा पुरानी परंपराओं को नए रूप में ढाल सकते हैं। उदाहरण के लिए, पारंपरिक त्योहारों को आधुनिक सामाजिक मुद्दों (पर्यावरण, शिक्षा) से जोड़कर मनाना, या पारंपरिक कला को नए डिजाइनों में पेश करना।

जिम्मेदारी:

युवाओं पर यह जिम्मेदारी है कि वे इस विरासत को एक जीवित और सांस लेती चीज बनाए रखें। इसे केवल अतीत का जमा हुआ बोझ न समझें, बल्कि भविष्य के लिए प्रेरणा और मार्गदर्शन का स्रोत समझें। उन्हें यह सोचना चाहिए कि वे कैसे इस विरासत को और समृद्ध कर सकते हैं और आने वाली पीढ़ी के लिए क्या नया जोड़ सकते हैं।

डिजिटल युग में इतिहास का प्रसारः नए माध्यम, नई पहुँच

डिजिटल युग विरासत के संरक्षण और प्रसार के लिए एक शक्तिशाली उपकरण प्रदान करता है। इसका सही उपयोग करके, हम चुनौतियों को अवसरों में बदल सकते हैं।

- **डिजिटल अभिलेखागारः** पुराने दस्तावेजों, तस्वीरों और ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग को डिजिटल रूप में सुरक्षित रखा जा सकता है। यह भौतिक क्षति और समय के प्रभाव से बचाता है और दुनिया भर में कहीं से भी पहुँच योग्य बनाता है।

- **वेबसाइट एवं ऐपः** एक समर्पित वेबसाइट या मोबाइल एप्लिकेशन बनाया जा सकता है, जहाँ वंशावली, ऐतिहासिक लेख, फोटोग्राफ्स, और साक्षात्कार उपलब्ध हों। इसे नियमित रूप से अपडेट किया जा सकता है।

- **सोशल मीडिया समुदायः** फेसबुक, व्हाट्सएप या टेलीग्राम जैसे प्लेटफार्मों पर परिवार के सदस्यों का एक समूह बनाया जा सकता है। यहाँ समाचार, तस्वीरें, और ऐतिहासिक जानकारी साझा की जा सकती है। यह दूर बैठे लोगों को भी जोड़े रखने का एक प्रभावी तरीका है।

- **मल्टीमीडिया कंटेंटः** यूट्यूब पर वीडियो बनाकर ऐतिहासिक स्थलों का वर्चुअल दैरा कराया जा सकता है, बुजुर्गों के साक्षात्कार प्रसारित किए जा सकते हैं, या एनिमेटेड वीडियो के जरिए इतिहास की कहानियाँ सुनाई जा सकती हैं। यह युवाओं को विशेष रूप से आकर्षित करेगा।

डिजिटल प्रसार का लक्ष्य केवल जानकारी फैलाना नहीं, बल्कि एक भावनात्मक जुड़ाव पैदा करना है। इससे लोगों को लगेगा कि वे एक बड़े और गौरवशाली सामूहिक इतिहास का हिस्सा हैं।

भविष्य की दिशा और दृष्टि: एक सामूहिक सपना

नरौनी विरासत का भविष्य केवल संरक्षण तक सीमित नहीं होना चाहिए। इसका भविष्य एक सक्रिय और प्रगतिशील दृष्टि पर आधारित होना चाहिए। इस दृष्टि में निम्नलिखित तत्व शामिल हो सकते हैं:

1. शिक्षा को केन्द्र में रखना: विरासत की सबसे बड़ी सुरक्षा शिक्षा है। परिवार के युवाओं को उच्च शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करना जारी रखना चाहिए। साथ ही, एक छोटी सी लाइब्रेरी या अध्ययन केंद्र स्थापित किया जा सकता है, जहाँ इतिहास, संस्कृति और अन्य विषयों की पुस्तकें हों।
2. सामाजिक उद्यमिता: विरासत को आर्थिक रूप से भी स्थायी बनाने के लिए, सामाजिक उद्यम शुरू किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, स्थानीय हस्तशिल्प को बढ़ावा देना, कृषि आधारित छोटे उद्योग लगाना, या गाँव में पर्यटन को विकसित करना (यदि ऐतिहासिक स्थल हैं तो)। इससे युवाओं को रोजगार मिलेगा और वे गाँव से जुड़े रहेंगे।
3. सामुदायिक सेवा की भावना: पूर्वजों ने जिस सामुदायिक भावना और सेवा को जीया, उसे आगे बढ़ाना चाहिए। गाँव में स्वच्छता अभियान, वृक्षारोपण, वृद्धाश्रम या कोचिंग क्लासेस चलाने जैसे कार्यों से समाज की सेवा की जा सकती है। यह विरासत को एक क्रियाशील मूल्य के रूप में स्थापित करेगा।
4. एक वार्षिक सम्मेलन या मेले का आयोजन: सभी शाखाओं के लोगों के लिए एक वार्षिक सम्मेलन या सांस्कृतिक मेले का आयोजन किया जा सकता है। इससे लोग

एक दूसरे से मिलेंगे, बातचीत होगी, और सामूहिक पहचान मजबूत होगी। इस आयोजन में ऐतिहासिक प्रदर्शनी, सांस्कृतिक कार्यक्रम और भविष्य की योजनाओं पर चर्चा हो सकती है।

इस प्रकार, विरासत का भविष्य एक सामूहिक सपना है, जिसमें अतीत का सम्मान, वर्तमान की सक्रियता और भविष्य की उम्मीद समाहित है। यह सपना तभी साकार होगा जब हर पीढ़ी अपनी जिम्मेदारी समझेगी और इस लंबी यात्रा में अपना योगदान देगी। नरौनी विरासत केवल एक कहानी नहीं है; यह एक जीवंत प्रक्रिया है, जो हमारे आज को अर्थ देती है और हमारे कल को दिशा।

उपसंहार - एक अमर यात्रा

नरवरगढ़ से नरेन्द्रपुर तक: यात्रा का सार

यह गाथा, जो नरवरगढ़ के ऐतिहासिक किले से शुरू हुई और बिहार के हरित ग्राम नरेन्द्रपुर तक पहुँची, केवल भौगोलिक दूरी की यात्रा नहीं है। यह एक अमर यात्रा है—एक ऐसी यात्रा जिसमें पथर के दुर्ग से निकलकर मानवीय संकल्प और सामुदायिक भावना के दुर्ग का निर्माण हुआ। इस यात्रा का सार केवल स्थानों के नाम बदलने में नहीं, बल्कि एक पहचान के रूपांतरण और एक विरासत के निरंतर नवीनीकरण में निहित है।

यह यात्रा हमें सिखाती है कि जड़ें महत्वपूर्ण हैं, लेकिन विकास के लिए जड़ों से ऊपर उठकर नई धरती में पनपने का साहस भी जरूरी है। दुर्गदेव और लबंगदेव ने यही किया। यह यात्रा हमें बताती है कि सत्ता और शक्ति का उपयोग केवल स्वयं के लिए नहीं, बल्कि पूरे समुदाय के कल्याण और सुरक्षा के लिए होना चाहिए। वंशीधर राय और शक्ति राय ने यही किया। यह यात्रा हमें दिखाती है कि अन्याय के सामने, चाहे वह कितनी भी बड़ी ताकत क्यों न हो, नैतिक साहस से डटे रहना ही वास्तविक वीरता है। वीरा राय, दीरगा राय और उमाकांत सिंह ने यही किया। और अंततः, यह यात्रा हमें यह आश्वासन देती है कि

शिक्षा, संस्कृति और सामाजिक समरसता ही किसी समुदाय को अमर बनाती हैं। डॉ. फणीश सिंह से लेकर न्यायमूर्ति शिवकीर्ति सिंह तक, असंख्य लोगों ने यही किया।

वंशगाथा का सामाजिक-ऐतिहासिक महत्वः एक सूक्ष्मदर्शी

नरौनी वंश की यह गाथा केवल एक परिवार का वृत्तांत नहीं है; यह भारतीय सामाजिक इतिहास के एक दिलचस्प पहलू को समझने का एक सूक्ष्मदर्शी (माइक्रोस्कोप) है। यह उन अनगिनत स्थानीय इतिहासों में से एक है, जो मिलकर हमारे राष्ट्रीय ताने-बाने को बुनते हैं। इस गाथा से हमें पता चलता है:

- प्रवास और समन्वय की गतिशीलता: कैसे राजपूत योद्धा समूह दूरदराज के क्षेत्रों में जाकर बसे और वहाँ की स्थानीय संस्कृति में घुल-मिल गए, लेकिन अपनी एक विशिष्ट पहचान भी बनाए रखी।
- सामंतवाद से सामुदायिक नेतृत्व तक: कैसे एक सैन्य-कृषि अभिजात वर्ग ने समय के साथ खुद को बदला और सामाजिक न्याय, शिक्षा और सांस्कृतिक संरक्षण के संवाहक बने।
- औपनिवेशिक विरोध के विविध रूपः यह गाथा दिखाती है कि अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष केवल बड़े सैन्य विद्रोहों तक सीमित नहीं था। यह स्थानीय जमींदारों के कर-विरोध, न्याय

के लिए कूटनीतिक संघर्ष और अंततः राष्ट्रीय आंदोलन में सीधी भागीदारी के रूप में भी व्यक्त हुआ।

- मौखिक इतिहास का महत्व: यह पुस्तक इस बात का प्रमाण है कि इतिहास लिखित दस्तावेजों से कहीं अधिक व्यापक है। मौखिक परंपरा, स्मृतियाँ और किंवदंतियाँ भी इतिहास की समृद्ध सामग्री हैं।

इस प्रकार, यह वंशगाथा एक सामाजिक-ऐतिहासिक दस्तावेज है, जो हमें बताता है कि सामान्य लोग कैसे असाधारण इतिहास रचते हैं।

आने वाली पीढ़ियों के लिए संदेश: विरासत की मशाल

इस लंबी यात्रा से प्राप्त अनुभवों और सीखों को संक्षेप में, आने वाली पीढ़ियों के लिए कुछ संदेश इस प्रकार हैं:

1. अपनी जड़ों को जानो: तुम कहाँ से आए हो, यह जानना तुम्हारा अधिकार और कर्तव्य दोनों है। अपने पूर्वजों के संघर्ष, सपने और उपलब्धियों को जानकर ही तुम अपने वर्तमान को सही ढंग से समझ सकते हो और भविष्य के लिए दिशा तय कर सकते हो।
2. गर्व करो, पर अहंकार नहीं: अपनी विरासत पर गर्व करो, क्योंकि यह तुम्हारी पहचान का हिस्सा है। लेकिन इस गर्व को कभी भी दूसरों से श्रेष्ठता का अहंकार न बनने दो। सच्चा गौरव विनम्रता और सम्मान के साथ रहता है।
3. विरासत एक जिम्मेदारी है: यह विरासत केवल गौरव का विषय नहीं, बल्कि एक जिम्मेदारी है। इसका दायित्व है कि तुम इसे और समृद्ध करो, इसे आगे बढ़ाओ, और इसे ऐसे रूप में सौंपो जो तुमसे भी बेहतर हो।

4. शिक्षा और सेवा को प्राथमिकता दो: तुम्हारे पूर्वजों ने शिक्षा और सामाजिक सेवा को महत्व दिया। यही वह मार्ग है जो व्यक्तिगत और सामूहिक उन्नति दोनों का आधार है। ज्ञानार्जन करो और अपने समाज की सेवा में उसे लगाओ।
5. एकता और समन्वय बनाए रखो: इस वंश की ताकत हमेशा उसकी एकता और सामाजिक समन्वय में रही है। आपसी मतभेदों से ऊपर उठकर, सामूहिक हित के लिए एकजुट रहो। अपने गाँव और समाज में सभी के साथ मिल-जुलकर रहो।

अंतिम शब्द: विरासत को आगे बढ़ाना

“नरौनी” नाम एक अंत नहीं, बल्कि एक निरंतरता है। यह उस धारा का नाम है जो नरवरगढ़ से निकली और अनंत सागर की ओर बह रही है। इस पुस्तक का लेखन इस यात्रा

का एक पड़ाव मात्र है। असली कहानी तो अभी लिखी जानी बाकी है—तुम्हारे द्वारा, आने वाली पीढ़ियों द्वारा।

विरासत को आगे बढ़ाने का अर्थ है इसे जमा हुआ धन न समझकर एक निवेश समझना। हर पीढ़ी को इस निवेश में अपनी कमाई, अपना सृजन जोड़ना चाहिए। कुछ नया सीखकर, कुछ नया बनाकर, कुछ नया देकर।

याद रखो, इतिहास के पन्ने केवल उन्हीं नामों को याद रखते हैं जो अपने समय से आगे की सोचते हैं और अपने से बड़े किसी उद्देश्य के लिए जीते हैं। तुम्हारे पूर्वजों ने ऐसा ही किया। अब तुम्हारी बारी है।

इस विरासत को केवल स्मरणोत्सव में न सीमित रखो। इसे अपने दैनिक जीवन के आचरण में, अपने पेशेवर नैतिकता में, अपने सामाजिक संवाद में जीवित रखो। जब तुम ऐसा करोगे, तब यह यात्रा सचमुच अमर हो जाएगी।

नरवरगढ़ की छाया लंबी है,
नरेन्द्रपुर की धूप तेज।
इसी संगम से बहता है,
वह स्रोत, जो अमर है, अविनाशी है।
वह स्रोत तुम हो।



नरौनी वंश की सदियों की यात्रा



978-93-6626-011-5